

**PADMASUNDARASŪRI'S  
YADUSUNDARAMAHĀKĀVYA**

**L. D. SERIES 105**

**GENERAL EDITORS  
DALSUKH MALVANIA  
NAGIN J. SHAH**

**EDITED BY  
D. P. RAVAL**



**L. D. INSTITUTE OF INDOLOGY AHMEDABAD 9**

For Private & Personal Use Only

[www.jainelibrary.org](http://www.jainelibrary.org)

# **PADMASUNDARASŪRI'S YADUSUNDARAMAHĀKĀVYA**

---

**L. D. SERIES 105**

GENERAL EDITORS

**DALSUKH MALVANIA**

**NAGIN J. SHAH**

EDITED BY

**D. P. RAVAL**



**L. D. INSTITUTE OF INDOLOGY AHMEDABAD 9**

Printed by  
Jhalak Printers  
Maliwada Pole  
Shahpur  
Ahmedabad-380 001  
and  
Published by  
**Nagin J. Shah**  
Acting Director  
L. D. Institute of Indology  
Ahmedabad-380 009

Published with the financial assistance of the Govt. of India,  
Ministry of Education & Culture, Department of Education, under  
the scheme of financial assistance for preservation of manuscripts.

FIRST EDITION  
August 1987

PRICE RUPEES ~~THIRTY EIGHT ONLY~~

पद्मसुन्दरसूरिविरचित  
यदुसुन्दरमहाकाव्य

---

संपादक  
डी. पी. रावल



प्रकाशक :  
लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर  
अहमदाबाद-९



## प्रधान संपादकीय

मुगल सम्राट अकबर की विद्वत्सभा के विद्वद्गुरुन कवि पद्मसुन्दर की अद्यावधि अप्रकाशित संस्कृत रचना यदुसुन्दर महाकाव्य का प्रकाशन करते ला. द. विद्यामंदिर को बड़ा ही हर्ष हो रहा है ।

प्रस्तुत महाकाव्य १२ सर्गों में विभक्त है । यह महाकाव्य पद्मसुन्दर की सर्जकता और पंडिताई का द्योतक है । वसुदेव और कनकावती के प्रेम और परिणय की कथा इस महाकाव्य में निरूपित हुई है । वसुदेवहिंडी के कनकावती लम्भक में तथा त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र के ८ वें पर्व के कनकावती परिणय नामक तृतीय सर्ग में यह कथावस्तु मिलती है ।

डॉ. डी० पी० रावल ने बड़े ही परिश्रम से इस महाकाव्य का संपादन किया है और इस संपादन को प्रस्तुत करके उन्होंने सौराष्ट्र युनिवर्सिटी की पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की है । अपनी प्रस्तावना में उन्होंने पद्मसुन्दरसूरि के जीवन और कृतियों का परिचय दिया है तथा महाकाव्य की कथावस्तु का विस्तृत आलेखन कर उसका मूल्यांकन किया है । इसलिए उन्हें अनेकशः धन्यवाद ।

संस्कृत साहित्य के अध्येताओं और विद्वानों को इस नये संपादन से लाभ होगा ऐसा मेरा पूरा विश्वास है ।

ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर  
अहमदाबाद-३८० ००९  
१५ जुलाई १९८७

नगीन जी. शाह  
कार्यकारी अध्यक्ष



## विषयानुक्रम

प्रस्तावना १-१२

यदुसुन्दरमहाकाव्य १-१८३

परिशिष्ट १

यदुसुन्दरमहाकाव्य में प्रयुक्त छन्द १८४





## प्रस्तावना

### हस्तप्रत परिचय

प्रस्तुत यदुसुन्दर महाकाव्य का संपादन उपलब्ध एकमात्र प्रति की सहायता से किया गया है। यह प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में सुरक्षित है। यह प्रति मुनिश्री पुण्यविजयजी के संग्रह की है। इसका क्रमांक ४७९९ है। यह प्रति कागज पर लिखी हुई है। इस की लिपि नागरी है। इस प्रति का परिमाण २७.३ × ११.३ से. मी. है। इस प्रति में कुल पत्र ५४ हैं। अंतिम पत्र का क्रमांक ५२ है किन्तु क्रमांक ३६ दो पत्रों को दिया गया है। प्रत्येक पत्र में १३ पंक्तियाँ हैं। कुछ पत्र में १४-१५ पंक्तियाँ भी हैं। पंक्तियों में अक्षरों की संख्या ४५ से ५० तक पाई जाती है। प्रति की अवस्था अच्छी है। इस प्रति का लेखनकाल १८वीं शती का उत्तरार्ध है।

### यदुसुन्दर महाकाव्य के प्रणेता पद्मसुन्दर

कवि श्री पद्मसुन्दर का जन्म राजस्थानगत तेजपुर गाँव में हुआ था, जो गाँव जोधपुर-नरेश मालदेव के हस्तक था<sup>१</sup>। कवि की कर्मभूमि तेजपुर, जोधपुर, चरथावल और दिल्ली रही<sup>२</sup>।

मुझफरनगर जिले के चरथावल गाँव के अग्रवाल वंश और गोइल गोत्र के तथा दिगम्बर सम्प्रदाय के काष्ठा संघ मथुरान्वय पुष्करगण के आम्नाय के श्रावक रायमल, जोधपुरनरेश मालदेव और दिल्ली के मुगलसम्राट अकबर के वे आश्रित और सम्मानित कवि थे<sup>३</sup>। वे नागपुरीय तपागच्छ के श्वेताम्बर संप्रदाय के प्रकाण्ड पण्डित साधु थे<sup>४</sup>। वे आनंदमेरु के शिष्य पद्ममेरु के शिष्य थे<sup>५</sup>। पद्मसुन्दर नाम के साथ उपाधिवाचक शब्द भट्टारक, उपाध्याय, वादी, गणि, सूरि, आचार्य, मुनि, पांडे, पंडित आदि प्राप्त होते हैं<sup>६</sup>। कवि के अपने विद्वान शिष्य का नाम हेमसूरि था<sup>७</sup>।

अकबर की विद्वत्परिषद् के ३३ हिन्दू सभ्यों में कवि पद्मसुन्दर का अग्र स्थान था<sup>८</sup>। अकबर की सभा में पद्मसुन्दर ने चन्द्रकीर्ति को परास्त किया था जिसके कारण अकबर ने

१. अनेकान्त, वर्ष ७, किरण ५-६, पृ. ४९-५२
२. जैन साहित्य का इतिहास, नाथूराम प्रेमी, पृ. ३९५-४०३
३. जैन साहित्यनो इतिहास, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ. २४६। संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ. ३६३-४
४. इति श्रीमन्नागपुरीयतपागच्छनभोमणि पण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुशिष्यपण्डितपद्मसुन्दरः इति... सुन्दरप्रकाशशब्दार्णवपुष्पिका।
५. पद्मावली समुच्चय, भाग २, चारित्रस्मारक ग्रन्थमाला क्र. ४४, अहमदाबाद, १९५०, पृ. २२४
६. अनेकान्त, वर्ष ७, किरण ५-६, पृ. ४९-५२
७. जैन परम्परानो इतिहास, भाग-२, पृ. ५९४
८. आइने-अकबरी, पृ. ५३७-५५४

प्रसन्न होकर पद्मसुन्दर को केबल पालकी और गाँव बखिस में दिये और सम्मानित किया<sup>१०</sup>। पद्मसुन्दर के गुरु आनन्दमेरु भी बाबर और हुमायु से सम्मानित थे<sup>१०</sup>।

कवि पद्मसुन्दर रायमल्ल, मालदेव और अकबर के समकालीन होने से वे इस्वी सन की १६वीं शती में हुए । हीरविजयसूरि की अकबर से भेंट सने १५८३ में हुई थी, तब अकबरने हीरविजयसूरि से कहा कि पद्मसुन्दर मेरे आश्रित थे और उन्होंने अपना ग्रंथसंग्रह मुझे समर्पित किया है<sup>११</sup>। इससे फालत होता है कि सने १५८३ से दो-तीन वर्ष पूर्व ही पद्मसुन्दर का निर्वाण हुआ होगा। अतः पद्मसुन्दर का निर्वाणवर्ष सने १५८० हो सकता है।

संवत् १६२५ (इ. स. १५६९) वैशाख वद १२ के दिन तपागच्छीय बुद्धिसागर द्वारा खरतर साधुकीर्तिजी का सम्राट की सभा में विजय हुआ तब पद्मसुन्दर आग्रा में थे, ऐसा अगारचंद नाहटा ने प्रस्तुत किया है<sup>१२</sup>। अतः पद्मसुन्दर की विधिमानता सने १५२० से १५८० तक थी ऐसा सिद्ध होता है। उनकी आयु ६० वर्ष की मानी जाय। साहित्य सर्जन का समय १५४५ से १५८० माना जाय।

### कविश्री पद्मसुन्दर की कृतियाँ

पद्मसुन्दर विद्वान कवि हैं। उन्होंने संस्कृत-प्राकृत में कई ग्रंथों की रचना की है। वे अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनकी रचनाएँ अलंकारशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, न्याय, नीति, स्तोत्र, चरित्र, महाकाव्य, कोश आदि अनेक विषयों में अव्याहत गति रखती हैं।

### प्रकाशित कृतियाँ :

- (१) अकबरशाही शृंगारदर्पण
- (२) कुशलोपदेश
- (३) प्रमाणसुन्दर
- (४) ज्ञानचन्द्रोदयनाटक
- (५) पार्श्वनाथचरित महाकाव्य

९. साहे: संसदि पद्मसुन्दरगणित्वा महापण्डितं  
श्रीमग्रामसुखासनाद्यकबरश्रीसाहितो लब्धवान् ।  
हिन्दूकाधिपमालदेवनृपतेर्मान्यो वदान्योऽधिकं  
श्रीमद्योषपुरे सुरेप्सितवचा: पद्माह्वय: पाठक: ॥—श्रीहर्षकीर्तिकृतघातुतरङ्गिणी

१०. मान्यो बाबरभूषुजोऽत्र जयराट् तद्वत् हमारुं नृपो—  
त्यर्थं प्रीतमना: सुमान्यमकरोदानन्दरायाभिधम् ।  
तद्वत् साहिशिरोमणेरकबरक्षमापालचूडामणे—  
मान्य: पण्डितपद्मसुन्दर इहाभूत् पण्डितव्रातजित् ॥

अकबरशाही शृङ्गारदर्पण, पृ. २०

११. जैन गूर्जर कविओ, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ. ७६१

१२ संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ. ३६३-४

## अप्रकाशित कृतियाँ :

- (१) परमतव्यवच्छेदस्याद्वादसुन्दरद्वात्रिंशिका<sup>१</sup>
- (२) राजप्रशनीयनाट्यपदभञ्जिका<sup>२</sup>
- (३) षड्भाषागर्भितनेमिस्तव<sup>३</sup>
- (४) वरमङ्गलिकास्तोत्र<sup>४</sup>
- (५) भारतीस्तोत्र<sup>५</sup>
- (६) सारस्वतरूपमाला<sup>६</sup>
- (७) हायनसुन्दर<sup>७</sup>
- (८) सुन्दरप्रकाशशब्दार्णव अपरनाम पदार्थचिन्तामणि<sup>८</sup>
- (९) रायमल्लाभ्युदयमहाकाव्य<sup>९</sup>
- (१०) जम्बूचरित्र (जम्बूअञ्जयण)<sup>१०</sup>
- (११) प्रज्ञापनासूत्रअवचूरि<sup>११</sup>

## यदुसुन्दर महाकाव्य में महाकाव्य के लक्षण :

संस्कृत काव्यशास्त्र में दी गई महाकाव्य की व्याख्या को यदुसुन्दर पूर्ण रूप से अनुसरता है। वह सर्गबद्ध है। कुल सर्ग १२ हैं। कथानक अनुसार प्रत्येक सर्ग का नामकरण किया गया है। सर्ग के अन्तमें छन्दपरिवर्तन होता है। सर्ग के अन्त में भावि सर्ग की कथा का सूचन मिलता है। यदुसुन्दर का आरम्भ 'चिद्रूप मह' की स्तुति से होता है। वस्तु पौराणिक है। पौराणिक

१ अनूप संस्कृत लायब्रेरी, लालगढ पेलेस, बीकानेर, हस्तप्रत नं. ९७४६

२ वही, हस्तप्रत नं. ९९३६

३ श्री अग्रचन्द नाहटा संग्रह, बीकानेर

४ वही

५ वही

६ पुण्यविजयजी संग्रह, ला.द. भा. सं विद्यामंदिर, अहमदाबाद, हस्तप्रत नं. ४०३।  
जैन शास्त्र भण्डार, राजस्थान, हस्तप्रत नं. ४१६

७ ला. द. भा. सं. विद्यामंदिर, हस्तप्रत नं. १०८०। ज्ञानभंडार लायब्रेरी, बिकानेर,  
हस्तप्रत नं. ५२७२।

८ श्रीवनेचंदजी सिंघि, सुजानगढ (राजस्थान)। श्री अग्रचन्द नाहटा संग्रह, बिकानेर।  
ला. द. भा. सं. विद्यामंदिर, हस्तप्रत नं १०००। कान्तिविजयजी शास्त्र संग्रह, छाणी,  
हस्तप्रत नं ४४८

९ कल्याणचन्द्र पुस्तक भंडार, खंभात. देखिए 'जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास,'  
खण्ड १, पृ. ११८

१० ला. द. भा. सं विद्यामंदिर, हस्तप्रत नं. ५११६

११ ला. द. संग्रह, ला. द. भा. सं. विद्यामंदिर, हस्तप्रत नं. ७४००

कथासाहित्य में सुप्रसिद्ध वसुदेव की विषयवस्तु को ले कर यदुसुन्दर की रचना की गई है। इस तरह क्षत्रिय वर्णके चन्द्रवंशीय राजा से सम्बद्ध यदुसुन्दर की कथावस्तु है। वसुदेव महाजनपद मथुरा के राजा और श्रीकृष्ण के पिता थे। वसुदेव कनकावती और अनेक विद्याधरीओं को अपने गुणों से जीत कर परिणय में प्राप्त करता है। वसुदेव धीरोदात्त प्रकार का नायक है। परोपकारी, धर्मनिष्ठ, वीर, उदार, कामदेवस्वरूप, युवांगनावलम्ब, कामशास्त्रवेदी, सकलकलाज्ञ, दानशूर, आनन्दी, कुलीन, सौभाग्यशाली, पुण्यशाली, अपूर्वपुरुष, सुमुख, उदासीन, ब्रह्मानन्दी आदि विशेषण उनको दिये गये हैं। नायक का अन्तरङ्गमित्र है चन्द्रातप, कुबेर को प्रति-नायक कहा जा सकता है। नगर, पर्वत, समुद्र, नदी, सरोवर, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय, जलक्रीड़ा, रतोत्सव, लग्न, वियोग, कुमारजन्म, युद्ध, रात्रि, यज्ञ आदि के वर्णन रसभावयुक्त और शब्दालङ्कारप्रचुर हैं। कथावृत्त न तो बहुत विस्तृत है, न तो बहुत संक्षिप्त है। प्रधान रस शृङ्गार है। हास्य, करुण, वीर, रौद्र आदि रसों का निरूपण भी चमत्कृतिपूर्ण है। वीज आदि पाँच अर्थपकृतियाँ, आरम्भ आदि पाँच कार्यावस्थाएँ और मुख आदि पाँच संधियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। संवादों से महाकाव्य रोचक बना है। वसुदेव-चन्द्रातप, चन्द्रातप-कनकावती, कनकावती-वसुदेव और कुबेर-वसुदेव संवाद काव्यदृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अत्रतत्र सज्जनप्रशंसा और दुर्जननिन्दा की गई है। महाकाव्य का शीर्षक 'यदुसुन्दर' नायक के नाम तथा वर्ण्य विषय पर से रखा गया है।

### यदुसुन्दर महाकाव्य का विषयवर्णन

#### प्रथमसर्ग-वसुदेवप्रस्थान :

जैन धर्म के विद्वान कवि श्री पद्मसुन्दर इस महाकाव्य के रचयिता हैं। जैन धर्म के मूल तत्त्व का भारतीय अद्वैतवेदान्त दर्शनशास्त्र में वर्णित मूल तत्त्व के साथ ऐक्य साधक आप अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण शब्दों में उसी तत्त्व की उपासना करते हैं, जो गायत्री-त्रिपदा मन्त्र की वैदिक व्याहृतियों में वर्णित है। फिर स्तुति निर्देश के साथ कवि ने मंगलाचरण किया है। प्रसंगवश कवि नायक, चन्द्रातप, विद्याधर तथा हंस का निर्देश करते हैं और मुद्रालंकार का प्रयोग करते हैं।

#### मथुरापुरी वर्णन २ से १८ :

भारत की सात मोक्षदायिका पुरीओं में से एक महान मथुरापुरी का वर्णन कवि विलक्षण रूप से करते हैं। यह मथुरा नगरी स्वर्ग से भी विशेष सुखदायी, शोभापूर्ण एवं समृद्ध महानगरी है। कवि ने समुचित शब्दों के प्रयोग के साथ सूक्ष्म निरीक्षणपूर्वक नगरी का वर्णन किया है। इससे कवि की पूर्ण विद्वत्ता का परिचय हमें मिलता है। मथुरा की पवित्रता, सम्पत्ति एवं गरिमा, अंगनाओं का रूप, यादवों की सुन्दरता, शालवृक्ष की उच्चता एवं गगनचुम्बी महल, यमुना का तट, महलों के महोत्सवों के वाद्यस्वर, विलासिनीओं के वस्त्राभरण की सुषमा इत्यादि वर्णित हैं। मथुरा की रमणियों के सुवर्ण कर-कमल में लक्ष्मी एवं रक्त मुखकमल में सरस्वती, मलिन-श्याम पंक में से उत्पन्न नील-श्वेत कमल को यानी अपने शाश्वत निवास स्थान को छोड़कर खेल रहे हैं। पूजा के समय

जिनालयों में नादब्रह्म का तादात्म्य सिद्ध होता है। महलों के शिखर चन्द्रकान्त एवं सूर्यकान्त मणियों से सुशोभित हैं। विशेष में वर्णित हैं—यमुना का शीतल पवन, भामिनीओं का केवल रतिक्रीड़ा में भुजबन्धन, प्रवाल तथा अशोक से सुशोभित गृह एवं वन, महाजन तथा वन में विपलवता, अरविन्द में एवं विट में मधुपत्र, काव्य तथा साधुओं में सुवृत्तता इत्यादि।

### यदुवंश वर्णन १९ से ३८ :

इस सर्वोत्कृष्ट मथुरानगरी के चन्द्रवंशी राजवंश में यदुवंश के इतिहास प्रसिद्ध राजा के पुत्र शूर का जन्म हुआ। शूर के यहाँ शौरि तथा सुवीर नामक सूर्य-चन्द्र के समान दो पुत्र हुए। शौरि का पुत्र अन्धक हुआ और उसके समुद्र आदि दस पुत्र हुए। इसी कारण से यह राजवंश धनुर्धारी दशार्ह के नाम से ख्यात हुआ। समुद्र वे सद से छोटे भाई वसुदेव इस महाकाव्य के नायक हैं। राजा शौरि ने अपने भाई सुवीर को जो युद्ध का मूल है ऐसा राज्य सौंप दिया; वे तपश्चर्या करके मोक्षमार्गी बन गये। सुवीर अपने वंश का एक प्रसिद्ध राजा था। उसके पुत्र का नाम भोजवृष्णि था, जिसके पुत्र उग्रसेन का पुत्र कंस था। इस दुराचारी कंस का विवाह जरासंध की पुत्री के साथ हुआ था। विवाह के बाद उसने अपने पिता उग्रसेन को राज्य से दूर किया, बन्दी बनाया, अपराजित तेज से युक्त और साभिमान धनुष का टंकार करनेवाला वह राजा बन गया।

### वसुदेव के दर्शन से मुग्ध पुरांगनाओं की शृंगार चेष्टाएँ :

इस ओर वसुदेव कामदेव के समान तेजस्वी एवं मोहक थे। इसी कारण से मथुरानगरी की तमाम स्त्रियाँ उन से मोहित थीं। इस मुग्धता का वर्णन भावोदय अलंकार में किया गया है। कोई नारी नेत्र से उनका पान कर रही रही है, अन्य नारी की गति में स्खलन आ जाता है, और अन्य संगम का आरोपण करके मानो उनका आलिंगन कर रही है। एक स्त्री तूटी हुई मालाओं का गुम्फन कर रही है, अन्य रागमण्डन। एक नारी स्तनपान करते बालक का त्याग कर देती है, दूसरी हाथ में रखे हुए दर्पण में पड़े हुए प्रतिबिम्ब का आलिंगन कर रही है। एक स्त्री उनके सामने कटाक्ष नीलोत्पल फेंक रही है, अन्य स्त्री शीत वायु के कम्प के साथ सीस्कार तथा पुलकित रोमाञ्च का अनुभव कर रही है। वसुदेव भी ऐसा भाव प्रगट करते हैं, मानों ओष्ठ का विदारण कर रहे हों। एक नगरजन समुद्र राजा के पास परियाद करते हैं कि “वसुदेव पुरांगनाओं का शीलभंग कर रहे हैं” (४५-४६)। बड़े भाई समुद्र राजा अपने छोटे भाई वसुदेव को बाह्य-परिभ्रमण छोड़कर, महल में रहकर शास्त्राभ्यास करने का, विद्याविशारद एवं सदाचारी बनने का उपदेश देते हैं (४७-४८)। परन्तु वसुदेव ज्ञानी, मर्मज्ञ तथा शब्दतत्त्ववेत्ता थे। अतः मथुरानगरी का छोड़कर चले जाने की इच्छा प्रगट करते हैं। (४९-५३)। वसुदेव गृहत्याग-प्रस्थान करते हैं। अपने क्षत्रियत्व के स्वाभिमान का रक्षण करने के लिये शस्त्र धारण करके उत्तर दिशा में प्रस्थान करते हैं। पुर, ग्राम, पर्वत, नदी, वन-उपवन से सुशोभित प्रदेशों में विहार करते हैं और अन्त में विद्याधरनगरी में प्रावृष्ट होते हैं (५४-५५)।

## विद्याधरनगरी का वर्णन (५६-६२) :

आन्तिमान अलंकार का प्रयोग करते हुए कवि विद्याधरनगरी का अत्यन्त मनोहर वर्णन करते हैं। रत्नमय भूमिओवाले महलों में चन्द्रकान्त मणियों में से द्रवित पीयूष का पान करके भ्रमर-वक्तियाँ कमलराजि के मधुद्रवपान की इच्छा नहीं रखती हैं; वेदिका पर रखे हुए आरस के कुंभ रात के समय चन्द्रज्योत्स्ना में रजतकुम्भ की आन्ति उदयन्न करते हैं। जिनमन्दिरो में से निकलते हुए धूपसमूह के कारण वर्षाकाल की कल्पना करके मयूर निरन्तर केकारव करते हैं। मणिमण्डप में पतिवेष्टित कोई वल्लभा पति को प्रतिबिम्बित मिथुन का दर्शन कराकर उसे कह रही है मानों कि “आप अन्य स्त्री में आसक्त हैं।” लाल माणिक जडित कुण्ड में बर्फ जैसा शीत जल भरा हुआ है, फिर भी दयितागण तृषित होने पर भी उसका पान नहीं करता है, क्योंकि उसे भ्रम होता है कि इससे तो लाल रक्तमय जल का पान हो जायेगा। मरकतमणि जडित मार्ग तथा विशाल शालवृक्ष की छाया में जल का भ्रम होने के कारण अनेक प्रकार के पक्षी भिन्न-भिन्न विशाओं में से उतर आते हैं। वसुदेव के अनुपम सौन्दर्य के कारण तिरस्कृत विद्याधरो की मण्डलियाँ अणिमा आदि आठ भूतियों में छिप गई हैं।

वसुदेव का शरीरसौन्दर्य देखकर विद्याधर युवतियाँ आकृष्ट एवं मोहित हो जाती हैं और रसपूर्वक उनका सांगोपांग नेत्रपान आकंठ कर रही हैं। रोहिणी आदि उनसे विधिवत् विवाह करती हैं (६४-६६)। यहाँ खगविद्या के ज्ञाता चन्द्रातप नामक विद्याधर के साथ वसुदेव की मित्रता जमती है। विद्याधर चन्द्रातप नायक वा अन्तरंग मित्र बन जाता है (६७-६८)। कथानायक वसुदेव अनेक विद्याधरीओं के साथ सुरत-सम्बन्ध में रत होकर कामशास्त्र का अभ्यास करते हैं। तृतीय पुरुषार्थ में निष्णात एवं रत होकर अनेक आमोद-प्रमोद के विहार के स्थानों में से विहरते हैं और केलि क्रीडाएँ करते हैं (६९-९०)। यहाँ हमें शृंगाररस के अभिव्यञ्जक भाव-विभाव-अनुभाव-संचारीभाव का कमनीय वर्णन मिलता है।

## सर्ग-२. चन्द्रातपसंगमन :

पीठालय नगरी के राजा हरिश्चन्द्र की कनकावती नामक एक कन्या है। इस कन्या के सौन्दर्य का सविस्तर वर्णन हमें इस सर्ग में मिलता है। नखशिख इस वर्णन में कनकावती के हरिणनेत्र, कचपाश एवं कुन्तल से शुरू करके ऊरुयुग्म, जंघायुगल, चरणक्रमाग्बुज तथा मरालगति एवं सुधागिरा का क्रमिक वर्णन किया है। कनकावती सर्वविद्याविशारद थी और मेघा में साक्षात् भारती और कान्ति में साक्षात् रति के समान थी (२ से ४७)। वह जब अत्यन्त रूपवती, लावण्यवती, और रति को भी लज्जाशील बना दे ऐसी नवयौवना बन गई, तब उसके लिये सुयोग्य वर प्राप्त होने के बारे में पिता चिन्तित रहने लगे। उसने निर्णय किया कि वे उसके स्वयंवर की रचना करेंगे। (४८) वसुदेव के मित्र और खगविद्या के ज्ञाता चन्द्रातपके मन में निर्णय होता है कि यह कन्या वसुदेव के लिये योग्य है। इसी विचार से प्रेरित होकर, जब कनकावती अपनी सखियों के साथ

महल के सबसे ऊपर के कक्ष पर खेल रही है तब हंस का रूप लेकर चन्द्रातप उसके पास जाता है। प्रकाशपुञ्ज के समान और ब्रह्माजी के वाहन जैसा हंस आया तो उसे अपने करकमल में लेकर उसका मार्जन करती है और हंस भी उसके अंगों के साथ लीला करता हुआ आनन्द मनाता है। राजकुमारी कनकावती इस हंस को सुवर्णमय पिंजड़े में रखने की बात अपनी सखियों को कहती है तब गीर्वाण वाणी में आतिथ्य के लिए कलकण्ठी को वह धन्यवाद देता है और कहता है कि वह सुवृत्तमौक्तिरुमाला कंठ में धारण करे और उसे मुक्त रखे। इस वाणी से प्रभावित बाला क्षमा की प्रार्थना करती है और उसके मनोभावों का वर्णन चाहती हैं (४९ से ५९)। विद्याधरनगरी के लालियादिके वर्णन से आरंभ करके हंस यदुवंश में जन्म पानेवाले वसुदेव का प्रभाव एवं प्रताप, वक्षःस्थल एवं बाहु, सुन्दरता, गुण और यौवन आदि का वर्णन करके कहता है कि राजकुमारी एवं वसुदेव का युगल कोकिला के पञ्चम स्वर के समान, चन्द्र एवं पूर्णिमा जैसा और मनुष्य जन्म को फलदायी बनानेवाला होगा। चन्द्रातप आगे कहता है कि स्वयंवर में यदि वह उपस्थित हो जाय तो उसकी पिछान के लिये उसका चित्र तैयार करके लाया है। कनकावती वसुदेव का चित्र देखती है, (६० से ६७)। देखते ही वह वसुदेवमय बन जाती है और कहती है कि “उस नाथ से मैं सनाथ बँूँ।” उसके लिये हंस चिन्तामणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष एवं कल्पलता जैसा और जीवनदाता लगता है। हंस के स्वरूप में स्थिर चन्द्रातप उसे धैर्यवान बनने को कहता है। कनकावती का सौन्दर्यवर्णन वह पुण्यामरवृक्ष, धनुर्वेद आदि के रूपकों के द्वारा करता है और पूरी श्रद्धा एवं आशा के साथ कहता है कि कनकावती अपने रूपलावण्य से कामदेव के समान सुन्दर वसुदेव को अवश्य ही जीत सकेगी। (६८ से ८१)

इस रीति से कनकावती के मनमें वसुदेव के प्रति पूर्णभाव एवं पूर्वानुराग का प्रादुर्भाव करके वह विद्याधर नगर में वापस लौटता है।

इस ओर वसुदेव के विरह में कनकावती सच्चिदानन्दरूपी अद्वैत ऐसे वसुदेवब्रह्म में तन्मय हो जाती है। (८२) चन्द्रातप वसुदेव के समक्ष राजकन्या का सन्देश पेश करता है (८३)। वसुदेव भी सब बातें सुनकर विरहतप्त होते हैं, पुलकित-रोमाञ्चित बन जाते हैं। बार बार वे कनकावती के बारे में पृच्छा करते हैं और प्रेमकथारूप सुधा का पान करते करते तृप्त नहीं होते। बातें सुनते-सुनते कनकावतीमय बन जाते हैं; कामदेव की माया से भ्रमित वे निद्रा भी नहीं पाते (८४)। केवल कनकावती की स्मरणभक्ति में तल्लीन ऐसे वे निज-परके भेद का विस्मरण पाते हैं, अद्वैत ब्रह्मलीन समाधिस्थ बनकर वे केवल कनकावती में अन्तित एवं चौथे सायुज्यमुक्तिपद की प्राप्ति करते हैं। (८५)

### सर्ग ३. वसुदेव-कनकानुलाप :

इस सर्ग के आरंभ में कनकावती के दैहिक सौन्दर्य एवं मनोभावों को ध्यान में रखकर उसकी विरहावस्था का वर्णन किया गया है। यहाँ उसकी कृशता, महाधि, तनुलता, वियोगक्षणों की कालगणना, विरहमूर्ति, चन्द्रोपालम्ब, अश्रुपात, इत्यादि का वर्णन किया गया है। विरहानल से दग्धा राजपुत्री को सखियाँ इन शब्दों में धैर्य धारण करने को कहती हैं—“हे सुदति !



तुम्हारा नाथ तो हृदय में ही बिराजमान है फिर इतनी व्यथा क्यों ?” फिर भी राजपुत्री विलाप, मूर्छा इत्यादि का अनुभव करती है तब सखियाँ कमल, चन्दन, शीतजल, शीतोपचार आदि से उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न करती हैं ।

वसुदेव भी अपने मित्र चन्द्रातप के साथ उस नगर में आते हैं । कनकावती के पिता उनका सत्कार करते हैं । तदनन्तर चन्द्रातप के साथ राजा के प्रमदवन में प्रवेश करते ही वसुदेव को शृंगार रसाभास से उपवनके विभिन्न तस्वों में क्रीडाएँ दृष्टिगोचर होती हैं । ये तस्व हैं—अशोक, प्रवाल, चम्पक, पाटल, रसाल क्रकचदल, पलाश, भ्रमर, पराग इत्यादि । वसुदेव अन्तरंग मित्र एवं प्रासंगिक नायक के साथ केलिक्रीडा करते हैं ।

उसी समय पुष्पक विमान में बैठकर राजराज किन्नरेश, गुह्यकेश्वर, हरसखा, वैश्रवण, पौलस्त्य, नरवाहन, श्रीद, विद्याधरेन्द्र, पुण्यजन आदि विशेषणों से अन्वित यक्षराज कुबेर उस उपवन में उतरते हैं । कुबेर वसुदेव के साथ सन्मानपूर्ण वर्ताव करते हैं, और कनकावती के साथ विवाह हो इसमें वसुदेव की मदद चाहते हैं । विनम्रता के भाव के साथ दूत्यकर्म की प्रार्थना करते हैं । यहाँ कवि याचक की स्वार्थपूर्ण दृष्टि का निरूपण सुन्दर शैली में करते हैं । कुबेर याचना के भावके साथ दुबारा दूत्यकर्मकी विज्ञप्ति पेश करते हैं । इस कार्य के लिये वसुदेव को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से कुबेर अनेक सुबोध वचन कहते हैं (४९ से ५७) ।

कुबेर वसुदेव के रूप एवं वाणी से अहोभाव का अनुभव करता है । दूतकर्म का स्वीकार करके अन्तःपुर में जाने के लिये तत्पर वसुदेव को कुबेर एक ऐसी विद्या देते हैं जिससे वह सबको देख सकते हैं और कनकावती सिवाय और कोई उन्हें नहीं देख सकता ।

विद्या का स्वीकार करके वसुदेव कनकावती के महल में प्रवेश करते हैं । यहाँ महल के अन्यान्य भागों का वर्णन हमें मिलता है । अन्तःपुर के वर्णन में कवि अपना पूर्ण कलाकौशल दिखलाते हैं; कनकावती के कक्ष का वर्णन तो सचमुच सर्वोत्कृष्ट है ।

यहाँ वसुदेव एवं कनकावती का प्रथम मिलन होता है और वे परस्पर भावानुरागी बनते हैं । उसी समय कामदेव शरसंधान करता है । (९७ से १०१)

वसुदेव के आगमन से नायिका खुश जरूर होती है, मगर बाद में पूछती है—“आप इस रक्षित महल में किस युक्ति से प्रवेश पा सके ?” आगे वह कहती है—“आपके जन्म एवं निवास का स्थल कोई भी हो, यह आपके जन्म से सचमुच कृतार्थ हो गया है । आपकी वाणी, आपके गाम्भीर्य औदार्य आदि सचमुच सर्वातिशायी हैं ।” फिर परिचय देने की विज्ञप्ति वह करती है तब सचमुच तो कनकावती के मधुर वचनों से वह खूब प्रभावित हुआ है । फिर भी वह तो आया है कुबेर के दूत के रूप में । इस सन्दर्भ में वसुदेव कुबेर के बारे में प्रशंसावचन कहते हैं—कनकावती के गुणों के श्रवण से कुबेर मृग्य हैं । इसी के चिन्तन में निद्रा खो बैठे हैं, इत्यादि । आगे वसुदेव कनकावती को कहते हैं—“सूर्य के संग से कुन्तीमाता देवांगना बनीं, उसी रीति से आप भी कुबेर के साथ विवाह करें और देवांगना बनें ।”

परन्तु इन बातों पर ध्यान देने के बजाय कनकावती तो वसुदेव का परिचय ही चाहती है। वसुदेव कहते हैं कि उनका नामोच्चारण निन्द्य है। फिर भी वे कहते हैं कि आप यदुवंश के वसुदेव हैं और इस समय तो कुबेर के दूत हैं। सखी द्वारा कनकावती कहती है कि राजहंस और श्वेत बगली, सच्चे मोती और काचमणि, मदोन्मत्त हस्ती और नाजुक हरिणी का योग संभव नहीं, वैसे कनकावती का योग कोई देव के साथ संभव नहीं। फिर आगे सखी से कनकावती स्पष्ट कहती है कि वह वसुदेव को छोड़कर इन्द्र का वरण भी नहीं चाहती; उसके शरीर का स्पर्श या तो वसुदेव करेंगे या तो अग्नि करेगा। वसुदेव फिर से दूत की वाणी में बात करते हैं तो कनकावती क्रुद्ध हो जाती है, रोने लगती है।

ऐसी परिस्थिति में दूतकर्म की चिन्ता छोड़कर वसुदेव कामदेव की आज्ञा के वशवर्ती बन जाते हैं और कनकावती को सान्त्वना देते हुए कहते हैं—“जैसे चन्द्र का जीवन रात्रि है, वैसे ही तुम मेरा।”

वसुदेव प्रमदवन में वापिस आते हैं। दूतकार्य तो किया, मगर कनकावती का सन्देश देते हैं कि “आप सचमुच महान हैं और मेरे पूज्य हैं।” मित्र के चित्तशुद्धियुक्त कार्य से वसुदेव के प्रति कुबेर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।

### सर्ग-४ कनकावती के स्वयंवर का वर्णन :

इस सर्ग में कनकावती के स्वयंवर का वर्णन पेश किया जाता है। अलग-अलग देश के अद्भुत वेषपरिधानयुक्त, अहंकारी, पराक्रमी, कामदेव जैसे सुन्दर राजकुमार अपने अश्व, रथ इत्यादि पर आरूढ होकर, आगे बढ़ जाने की स्पर्धा करते-करते वहाँ आते हैं। नगर के मार्ग इन राजकुमारों के अश्व, हस्ती, पायदल, रथदल इत्यादि से भरे पड़े हैं। वसुदेव समक्ष तिरस्कृत कुबेर भी आते हैं। कुबेर वसुदेव को एक ऐसा अंगुलीयक देते हैं जिसके पहनने से वे बराबर कुबेर जैसे दिखाई देते हैं। सारा नगर अनेक राजा, राजकुमार और उनके रसाले से स्वर्ग समान खिल उठा था।

अतिथिसत्कार के बाद राजाओं को सुन्दर महलों में निवास दिया गया है। इस सर्ग में राजपुत्रों का वर्णन सुन्दर शैली में किया गया है। महलों में राजपुत्री के चित्रों की प्रदर्शनी है, जिसे देखकर तमाम राजपुत्र सविशेष उत्कण्ठित बन जाते हैं। फिर आता है अत्यन्त मनोरम स्वयंवर वर्णन और स्वयंवर प्रवेश करती हुई राजकुमारी का वर्णन। उसके अंगप्रत्यंग एवं अलंकारों का अत्यन्त मनोरम वर्णन करने के साथ इसे देखकर किम रीति से तमाम राजपुत्र कामविह्वल बन गये इसका निरूपण भी दिया गया है। साथ-साथ स्वयंवर मण्डप का भी वर्णन कवि चारुरीत्या करते हैं।

कनकावती स्वयंवरमण्डप में प्रवेश करती है। उसकी सखी सुवदना सर्वप्रथम देवों का परिचय देती है और किसी देव का वरण करने का सूचन करती है। कनकावती देवों को प्रणाम करती है, वरण न होने के कारण देव श्याम पड़ जाते हैं।

बाद में भवन्तिराज, गौड़राज, काशिराज, और साकेतराज का वर्णन-प्रशंसन किया जाता है। उसका मन तो परब्रह्म में लीन साधक-सा वसुदेव में ही लीन है।

### सर्ग ५-मुद्रितनृपकुमुद :

स्वयंवर मण्डप में राज्यों का वर्णन आगे बढ़ता है। पाण्ड्यराज, कलिगराज, नेपाल के राजा, मलयदेश के राजा, कांची के राजा, कीटकराज, मिथिला के राजा आदि का वर्णन सुवदना करती है, परन्तु कनकावती की आँखें तो वसुदेव को ही खोज रही हैं।

### सर्ग ६-वसुदेव वरण :

स्वयंवर वर्णन आगे बढ़ता है। अब कुबेर का वर्णन आता है, और फिर आता है यादवकुलभूषण का विस्तीर्ण वर्णन। उसके गुण, ज्वानी, रसिकता आदि का वर्णन अनेकविध कल्पनों के साथ कवि करते हैं। इस श्लेषमय, हृदयंगम वर्णन में कवि का कवित्व खिल उठता है।

मगर वसुदेव कुबेर जैसे भी लगते हैं। किन्तु मानव होने के कारण वसुदेव धरातल-स्पर्शी हैं, उनके शरीर पर प्रस्वेदबिन्दु दिखाई देते हैं, उनके कण्ठ में शुद्ध सोने में रस जड़ित शृंगार कल्पलता है, वसुदेव के नयन सनिमेष हैं, उनके कण्ठ की पुष्पमाला सुरझा रही है। इन प्रमाणों से वसुदेव का परिचय हो जाने पर कनकावती सच्चे कुबेर के पास प्रार्थना करती है, सनाथा बनना चाहती है। वसुदेव को कुबेर आज्ञा देते हैं, अंगुलीयक दूर होते ही वसुदेव अपने सच्चे स्वरूप में प्रगट होते हैं। पहले अन्तःपुर में दर्शन हुआ था, यही वसुदेव हैं वह। कनकावती उनके कण्ठ में माला पहनाकर वसुदेव का वरण करती है।

नगर में आनन्दघोष होता है, वाद्य बजते हैं, राजागण श्याम पड़ जाता है। सारा वातावरण आनन्दविभोर हो जाता है। युगल सर्वथा परस्परानुकूल है। उसके वर्णन में कवि सम, उपमा, व्यतिरेक आदि अलंकारों का प्रयोग करते हैं। राजकुमार-राजागण अपने निवास प्रति गमन करते हैं।

### सर्ग ७-वरालंकरण :

कमनीय रूप से अन्वित, वरवर्षिणी स्त्रीओं से घेरे हुए वसुदेव राजग्रह जाते हैं। मार्ग में उनके गुणगानरत बन्दीजनों को प्रभूत धन देते हैं। वे वसुवारि की वर्षा कर रहे हैं। “ इस वरसे उभय श्रेष्ठ कुलों की शोभा बढ़ेगी ” ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र शुभलग्न की तैयारी करने का अपनी रानी को कहते हैं।

ज्योतिषियों को विवाह का मुहूर्त पूछा जाता है। वे श्रेष्ठ मुहूर्त निकालकर देते हैं, जो उदयास्त-निर्मल और सूर्य, चन्द्र और गुरु से बलान्वित है। इस पर दूत द्वारा वसुदेव की सम्मति पायी जाती है। उचित समय पर कन्या के पिता उनके आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। रानी के मार्गदर्शन में शुभलग्न की स्वरित तैयारी हो रही है।

इसके बाद हमें तैयारी और सुशोभन का विस्तीर्ण वर्णन मिलता है। राजकुमारी को स्नान कराया जाता है और स्नान के बाद वस्त्रालंकार सुशोभनों से अन्वित देह चम्पा के पुष्प और सुवर्ण जैसा खिल उठता है, चारों ओर सुगन्ध फैल उठता है। उसी दिन से जगत के लोग कहते हैं कि “सोने में सुगन्ध मिली।”

फिर हमें मिलता है वेदिका पर बैठी हुई कन्या का विस्तृत अनुपम वर्णन।

वसुदेव भी विवाह के लिए तैयार एवं सुशोभित किये जाते हैं, सूर्य के समान सात अश्वोंवाले रथ पर आरूढ होकर निकलते हैं। राजमार्ग पर पुरांगनाएँ निकल पड़ती हैं। वसुदेव के दर्शन के लिए उत्सुक और दर्शनमुख्य नारियों का वर्णन किया है गया।

### सर्ग-८ वसुदेव परिणय :

महामूल्यवान वस्त्रालंकार विभूषित अनेक राजकुमार अश्वारूढ होकर वसुदेव की बारात में उपस्थित हैं। अत्यंत सुशोभित वसुदेव राजकुमार और नृपगण का वर्णन यहाँ सौन्दर्य की पराकाष्ठा पर पहुँचता है। वसुदेव का स्वागत करते कनकावती के पिता उनका आलिंगन करते हैं। अपनी पुत्री का वे पूरी प्रसन्नता के साथ कन्यादानविधि सम्पन्न करते हैं, मानों हिमालय ने गौरी का, समुद्र ने लक्ष्मी का कन्यादान दिया।

बाद में विवाह सम्पन्न होता है। वसुदेव को और अन्य सभी को समुचित भेटों से सम्मानित किया जाता है।

तीन चार दिन के बाद अपने परिवारजनों के साथ बारात अपने गृह प्रति गमन करती है। कनकावती को वसुदेव स्वयं रथारूढ करते हैं। थोड़े अन्तर तक वसुदेव परिवार तथा सेना को लेकर साथ जाते हैं। इसके पहले कन्या की बिदा का प्रसंग करुण मिश्रित शान्त रस से अन्वित है। बिदा करते समय पिता पुत्रीको वसुदेव को अपना सर्वस्व मानकर, परमात्मा मानकर उनकी नवधा भक्ति के साथ सेवा करने का उपदेश देते हैं।

इस सर्ग में विभिन्न वर्णनों में कवि ने उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, आशी, श्लेष, सूक्ष्म आदि अनेक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है।

### सर्ग-९ वनविहार वर्णन :

विवाह के बाद पति-पत्नी मथुरा के मार्ग में वनविहार कर रहे हैं। एक दूसरे के संग में वसुदेव एवं कनकावती अत्यन्त सुन्दर, परस्परानुरूप लगते हैं। प्रियतमा की प्रसन्नता के लिए वसुदेव वनयुगल दिखलाते हैं, इनका वर्णन करते हैं। इन युगलों में मुख्य हैं सारस-सारसी, हंस-हंसी, चक्रवाक-चक्रवाकी, मयूर-मयूरी।

फिर क्रमानुगत ऋतुवर्णन दिये गये हैं। कवि वसन्तवर्णन से आरंभ करके शिशिर तक आते हैं। वर्णन सुन्दर, तादृश एवं वैविध्यपूर्ण तथा प्रसन्नकर हैं।

### सर्ग-१० विजयश्री वरण :

वसुदेव कनकावती के साथ मथुरा प्रस्थान कर रहे हैं। अरिष्टपुरके बाहर रुकते

हैं। पैदल नगरचर्या करते हैं। यहाँ राजसमूह दिखाई देता है। यहाँ कवि भिन्न-भिन्न राजाओं की शृंगार चेष्टा का वर्णन करते हैं।

विद्या के बल पर अपना रूप परिवर्तन करके वसुदेव स्वयंवर-मण्डप में प्रवेश करते हैं। राजपुत्री रोहिणी का स्वयंवर रचा गया है। उसी समय शुभ विवाह के मंगल परिधान में हाथ में वरमाला के साथ रोहिणी प्रवेश करती है। सब राजा विह्वल हो उठते हैं। अनेक राजाओं का परम्परित वर्णन वेगवती ने किया, किन्तु रोहिणी खुश नहीं है। चंद्र की निकटवर्ती रोहिणी की भाँति राजकुमारी रोहिणी चन्द्रसमान तेजस्वी वसुदेव को देखकर प्रसन्नचित्त हो जाती है और पति के रूपमें उनका वरण करती है।

वसुदेव ने तो रूप परिवर्तन किया है। यह जानकर विरोध उठता है। राजसैन्य इकट्ठा हो गया, युद्ध हुआ, तुमुल युद्ध।

सब दलों के साथ युद्ध करने के बाद विजयी वसुदेव पर पुष्पवृष्टि होती है। फिर कोई जादूगर क्षत्रिय पुरुष की कीर्ति की विडम्बना करता है। फिर युद्ध, युद्धवर्णन और विजय की कथा। आगे चलते चलते अनेक कन्याओं के साथ विवाह।

फिर से मथुरा के प्रति आगे प्रस्थान।

### सर्ग-११ कनकानिधुवन :

यह सारा सर्ग वसुदेव-कनकावती के संभोग शृंगार का वर्णन करता है। नायक की चेष्टाएँ, नायिका के विभिन्न प्रतिभाव आदि का निरूपण, वर्णन कवि करते हैं। पूरे सर्ग में मुक्त शृंगार, कामचेष्टाएँ आदि का प्रायः वाच्य में निरूपण किया गया है। अन्तःपुर में कामक्रीडा के बाद वनविहार और वन-उपवन क्रीडा का वर्णन कवि देते हैं।

### सर्ग : १२-सन्ध्योपश्लोक मंगलगान :

इस सर्ग में हमें अति लम्बे भावावेश सभर वर्णन मिलते हैं। प्रकृति के साथ एक-रूप मानव भावों का सायुज्य दिखाया जाता है।

सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्र और इनके बीच प्रकृति तथा उसमें मानव का विहार यहाँ वर्णित है। अनेक रसों का निरूपण किया गया है।

प्रातःकाल का वर्णन, बन्दीजनों का गान इत्यादि भी हैं।

यहाँ काव्य के १२ सर्गों की समाप्ति होती है। १०६४ श्लोक वाले काव्य की समाप्ति मंगलान्त गान के साथ सम्पन्न होती है।

पद्मसुन्दरसूरिविरचित  
यदुसुन्दरमहाकाव्यम्

। ॐ श्री जिनाय नमः ।

विनिद्रचन्द्रातपचारु मूर्धुवः—

स्वरीशमार्हन्त्यमनाद्यनश्वरम् ।

स्वचुम्बिसंविदघृणिपुञ्जमञ्जरी—

परीतचिद्रूपमुपास्महे महः ॥१॥

इहैव वर्षे यदुवंशपुङ्गवः

पवित्रिता विश्वजनीनविक्रमैः ।

लघूकृता द्यौरनया दिविस्थिता

स्वसम्पदोरुर्मथुरापुरी मुनि ॥२॥

सहस्रशीर्षः पुरुषो विभर्ति यां

शिरःसहस्रेण विदन्गरीयसीम् ।

सहस्रपात्पाद्भवरोऽसभाजय—

त्परीत्य नित्यं परिवर्तनच्छलात् ॥३॥

यदङ्गनारूपनिरूपणाय वा

गुहः षडोस्यश्चतुराननी विधिः ।

दिदक्षया यौवतनर्ममर्मणां

हरिः सहस्राक्ष इव स्म यत्र श्रुत् ॥४॥

निराकृता नाकिनिकायमण्डली

निलीय दृक्कोणपथातिगाऽभवत् ।

यदू द्वहैः सुन्दरतापराजितः

किमत्र पञ्चेपुरनङ्गतामगात् ॥५॥

यदीयशालः कपिशीर्षशीर्षता—

वतंसलाभाय सुरापयामिव ।

यियासुरेतत्कमलातिगर्भकं

चिकीर्षुरुच्चैःपदमारुरोह यत् ॥६॥

अदभ्रमभ्रंलिहसौधमण्डली—

शिरःस्खलद्वाहरयादहर्षतिः ।

ध्रुवं चकारोत्तरदक्षिणायने

स भीतभीतोऽत्र यतस्तिरोऽञ्चति ॥७॥

रविस्तटे यच्छिखराम्रलिप्सया

समाधियोगात्किल तप्यते तपः ।

कलिन्दकन्याकलदण्डमुद्ग्रहन्

सुयोगपट्टं परिखामिषेण यत् ॥८॥

बहुक्षणैर्मन्दिरतल्लजैरलं

विमानिता यत्र विमानसम्पदः ।

घनस्वरैर्यत्र घनाघनध्वनिः

समं पराजीयत तूर्यनिःस्वनैः ॥९॥

दरस्मितस्मेरविलासिनीजनः

परिष्कृतो मूषणभूष्यमण्डलैः ।

सुपुष्पवन्तौ हसतीव पक्षयो-

रहर्निश चञ्चदनञ्चितश्रियौ ॥१०॥

गृहे गृहे खेलति यत्र खेलया

जनीयुगं स्त्रीगणरामणीयकम् ।

कराम्बुजे श्रीर्वदने सरस्वती

विहाय पङ्करुहपङ्कजाश्रयम् ॥११॥

सदाऽर्हतामायतनेष्वगर्हिता—

र्हणासु तौर्यत्रिकनादडम्बरैः ।

अयधत्त सांराविणमार्हतो जनः

किलैककं ब्रह्म ततो विदुर्बुधाः ॥१२॥

सिताश्मवेशमाग्रतलेषु पुञ्जितै-

मंणीचकैस्तारकितं नभो दिवा ।

प्रतीयते नक्तमहश्च यत्र वा

सदाऽर्ककान्तोपलविग्रहे गृहेः ॥१३॥

पुराङ्गनासौरभचौरिकाचणो

रतिश्रमस्वेदलवस्य तस्करः ।

यदाशुगो यामुनशीकराकुलो

मनोहरो यद्युवतीषु यद्युवा ॥१४॥

कृताभिमानादपि भामिनीजनाद्

भयं कलिर्यत्र रतेषु बन्धनम् ।

प्रसूनमार्येषु च मत्तकाशिनी-

भुजैर्युवस्वेव मृणालकोमलैः ॥१५॥

प्रवालशालीनि गृहाणि यत्र वा

वनानि चाशोकघनानि रेजिरे ।

विपल्लवो यत्र महाजनेषु न

क्वचिद्वने कश्चन वा विपल्लवः ॥१६॥

सुसौमनस्य सुजने वनेऽत्र वा

विटेऽरविन्दे मधुपत्वविभ्रमः ।

सुवृत्तता शुकितजकाव्यसाधुषु

प्रमाणता दृक्छुतयोः प्रमेयता ॥१७॥

रसाकुलं कामिकुलं च गोकुलं

रसायनं काव्यगुणे सुमेषजे ।

महामहः पौरगृहेऽत्र राजके

सदाऽप्सरःशोभि वनं सुमेरुवत् ॥१८॥



तदत्र राजन्वति राजति स्म राइ-

यदुर्नदीमातृकनामनीवृति ।

यतोऽगमद्यादववंशसंकथा

प्रथां जगच्चित्तचकोरचन्द्रिका ॥१९॥

तदङ्गजः सूर इति प्रतापवान्

सुहृन्मनोऽभोजविकाशनक्षमः ।

दुर्हृदवशःकैरवकोशमुद्रणा-

निभालने सूर इवापरोऽभवत् ॥२०॥

तदुद्धौ सौरिरथो सुवीर इ-

त्यभिरुयय ज्येष्ठकनिष्ठतां गतौ ।

निजान्ववायैकनभोनभोमणि-

क्षपामणीव प्रसभं रराजतुः ॥२१॥

नृपस्य शोरेस्तनुजोऽन्धकोऽभवद्

रिपुकृतुध्वंसनताऽन्धकारिवत् ।

ततः समुद्रोदरशुक्तिशुक्तिजा

बभुः समुद्रादय आत्मजा दश ॥२२॥

दशार्हदिवचकशतक्रतूपमो

धनुष्मतां धामवतां धुरन्धरः ।

यदोजसः सञ्ज्वरतामसासहि-

र्विधिव्यधादात्मकरे कमण्डलुम् ॥२३॥

समुद्रनामा यदुवंशभूभृतां

शिरोमणिः पूरुषरत्नशेवधिः ।

यशो यदीयं विललास पाण्डुरे

सपत्नपत्नीकुचगण्डमण्डले ॥२४॥

॥ युग्मम् ॥

यदुसुन्दरमहाकाण्डं

ततः कनीयाननुजो मनस्विनां  
महत्तरो यो वसुधासुधाधिपः ।  
सुभाग्यसौभाग्यकलाकलानिधि—  
निधिर्वसूनां वसुदेव इत्यभूत् ॥२५॥

यदीयकीर्तिव्रततेर्नवाङ्कुराः  
सुदिश्यदन्तावलदन्तपङ्क्तयः ।  
दलानि गङ्गाकुसुमानि तारकाः  
फलान्यशीतांशुसितांशुशुक्तिजाः ॥२६॥

अथो नृपः शौरिरशेषभूतल—  
प्रभूतभूपालकभालभूषणः ।  
न्यधापयत्स स्वदंप सुवीरके  
स्वयं मुमुक्षुर्गृहविग्रहग्रहम् ॥२७॥

नृपः सुवीरो रिपुवीरविक्रम—  
प्रतापबालार्कबलाहकोदयः ।  
शशास सर्वामपि सागराम्बरां  
स राजबीजी निजबीजिशङ्कयफः ॥२८॥

तदङ्गजन्मा भुवि भोजवृष्णिरि—  
त्यभिख्ययाऽभूद्भुवनैकभूषणः ।  
द्विषन्महीन्द्रुद्रमकुञ्जभञ्जन—  
द्विषेन्द्रदेश्यः किल राजपुङ्गवः ॥२९॥

तदङ्गजोऽथोग्र इवोग्रसाहसो  
य उग्रसेनः पितृविश्रमप्रदः ।  
बभार भूभारमखण्डमण्डलं  
धुरै धुरीणोऽधरदुर्वहामिव ॥३०॥

तदुद्धहः कंस इति स्वरूढिता—

गुणेन वित्तो यदुवंशसम्भवः ।

यदीयतेजस्तपनोष्मसाध्वसाद्

भवः स्वमौलौ सुरनिम्नगामघात् ॥३१॥

ततो जरासन्धनृपप्रसादतः

स्ववंशविध्वंसनृशंसकौणपः ।

हरस्व राज्यं पितुरुग्रसेनतो

मुषाण कोशं जनकं बधान च ॥३२॥

पुषाण भोगानरिराजपत्तनं

क्षणादवस्कन्द नभान दुर्दमान् ।

किलशान दुःशासनृपोपवर्तनं

जिगाय जय्यानरिजैत्रविक्रमः ॥३३॥

॥ विशेषकम् ॥

धिगेतकान्भङ्गुरभोगसङ्गमा—

नवासिरभ्यान्पुनरायतिद्बुहः ।

तृणेढि जन्यो जनकस्य यत्तृषा

तृणाग्रनीरैः शममेति किं तृषा ॥३४॥

पतन्ति यज्जन्मनि नैव पूर्वजा

अवीचिकृच्छ्रे तदपत्यमित्यपि ।

विदन्ति तज्ज्ञा अमुना जिजीविषत्-

पितुः पुनर्व्यत्ययपञ्जिका कृता ॥३५॥

स भीमकान्तादिगुणैरलङ्कृतोऽ—

प्यधृष्यधामाऽभवदुद्धतद्विषाम् ।

मृदुमृदूनां नयचञ्चुपौरुषो

भनक्ति वायुर्दुगणं न वीरणम् ॥३६॥

निनंस(क्ष)वो मे सुहृदो हृदिस्थिताः  
 श्रयन्तु दिक्चक्रमनम्रकन्धराः ।  
 समाचक्षे किल यद्धनुर्गुणः  
 कठोरटङ्काररवेण राजकम् ॥३७॥

विपक्षभूपालवधोत्थपातक—  
 स्वकालकायत्वफलङ्कशङ्कया ।  
 असिस्तपस्वी किल यस्य वैरिता—  
 यशःपयः किं व्रतयत्यनारतम् ॥३८॥

विहारचारे विहरन्पुराङ्गना—  
 विलोलहृक्कैरवकौमुदीपतिः ।  
 कयाचन प्रेमसुधोर्मिसान्द्रया  
 दृशा स्मरात्मा वसुदेव ऐक्ष्यत ॥३९॥

परा दृशाऽपीयत पीवरस्तनी—  
 दमीयसौन्दर्यसुधातरङ्गितम् ।  
 अमूसुहृद्रङ्गदनङ्गविभ्रम-  
 स्खलदूगतिः काऽप्यदसीयलीलया ॥४०॥

कयाचिदाश्लिष्यत मन्मथान्धया  
 धिया तदारोपितसङ्गरङ्गया ।  
 यदीप्सितं वस्तु न हस्तगोचरं  
 मनोविनोदः खलु केन वार्यते ॥४१॥

परा नृटन्मौक्तिकदामगुम्फनं  
 जनी द्रवद्यावकरागमण्डनम् ।  
 स्तनं धयन्तं च परा स्तनधयं  
 विहाय तद्दर्शनलालसाऽचलत् ॥४२॥

परा करादर्शनिलीनतद्वपुः  
समालिखिञ्ज प्रलथनीविबन्धना ।  
पथि प्रयातोऽस्य गवाक्षगा परा  
कटाक्षनीलोत्पलमक्षिपत्पुरः ॥४३॥

तनूरुहानङ्कुरयत्ययं तनौ  
तनोति सीत्काररवं सन्नेपथुम् ।  
विदारयत्योष्ठममुष्य सङ्गमो  
हिमान्किः किं तरुणीष्वजृम्भत ॥४४॥

अथैकदा पौरजनः सदःस्थितं  
समुद्रभूपालमदो व्यञ्जिज्ञपत् ।  
पुराङ्गनाशीलपरासनोद्धत—  
स्तवानुजः सम्प्रति साम्प्रतं न तत् ॥४५॥

निवस्तुमीष्टे कथमत्र मादृशो  
भवादृशो यत्र बिलङ्घितकमः ।  
पिता स्वपुत्रस्य निहन्ति हन्त चेत्  
जिज्ञीविष्वा तस्य कुतोऽकुतोभया ॥४६॥

ततस्तमाह्वय नृपो रहोऽभ्यधा—  
न्नयापदेशोक्तिभिरेव चाटुभिः ।  
अटाट्यथा ते भविता मलीमसं  
वपुर्वपुष्मन्नधितिष्ठ तद्गृहे ॥४७॥

श्रुतेष्वधीती रसिको रसायने  
कवित्ववक्तृत्वकलाविलासवान् ।  
अलङ्कृतौ छन्दसि नाटकेऽचिरात्  
प्रमाणमभ्यस्य विशारदो भव ॥४८॥

तदिज्जितज्ञः स परामृशद्वचो  
 हितं क्वचित्स्यादहितप्रयोजकम् ।  
 सुधीदृशा सूक्ष्मदृशो हि विष्टपं  
 विलोकयन्ति स्म दृशा परे पुनः ॥४९॥

अहो ! महामानधनार्थिनः कदा  
 न नीचवृत्त्या निजवर्तनं व्यधुः ।  
 सुचातकश्चारुपयः पयोमुचां  
 समुत्समुत्कन्धर एव पीयते ॥५०॥

ध्रुवं सधाम्नामिह धामजीवितं  
 विनैव तज्जन्ममनीषितं मुधा ।  
 इति ब्रुवन्नस्तमियाय भास्करः  
 प्रतापमान्द्यं महतां सुदुर्वहम् ॥५१॥

अरुन्तुदो दुर्विषहो मनस्विनां  
 स्वबन्धुवर्गस्य वचः शिलीमुखः ।  
 वरं विदेशः कलुषे हि मानसे  
 न सन्मरालस्थितिरत्र शोभना ॥५२॥

विचित्रविज्ञानकलासु कौशलं  
 स्वभागधेयस्य फलं प्रकाशते ।  
 विजृम्भते कीर्तिरुदेति पौरुषं  
 गुणेषु धैर्यं विषयान्तरक्रमात् ॥५३॥

इति स्वचेतस्यवधार्यं निर्ययौ  
 कृपाणवाणिः परिणाहिभाग्यभाक् ।  
 न चैकको गहरगाहनोद्यतो  
 मृगाधिपो नु प्लवतामपेक्षते ॥५४॥

ब्रजन्पुरमामशिलोच्चयादिकान्  
 सरिद्द्रुमारामविहारकौतुकान् ।  
 व्यतीत्य विद्याधरराजिराजितं  
 जगाम विद्याधरपत्तनं क्रमात् ॥५५॥

यदीयचामीकरसौधकुट्टिमा—  
 वनद्धचन्द्रोपलसन्द्रवन्मधु ।  
 निपीय पीयूषमिवालिमालया  
 विशेष ईषे न सरोजराजिषु ॥५६॥

अदभ्रशुभाश्मशिलावितर्दिषु  
 प्रकाशसङ्क्रान्तविरोचनत्विषा ।  
 पुरलियो राजतकुम्भविभ्रमं  
 विभाव्य यत्र स्वकरप्रथां व्यधुः ॥५७॥

यदीयसिद्धायतनप्रधूपित—  
 प्रधानराजार्हजधूमडम्बरैः ।  
 शिखावलैर्दुर्दिनमेव सर्वदा  
 विमुक्तकेकाविहृतैर्विभाव्यते ॥५८॥

कयापि पत्या मणिमण्डपस्थया  
 मणिप्रतिच्छायितदेहवेष्टया ।  
 परानुरागीत्यसि विप्रलम्भनै  
 रहस्युपालभ्यत यत्र वल्लभः ॥५९॥

सुशोणरत्नोपलनद्धमूलला—  
 स्तुषारनीश अपि यत्र दीर्घिकाः ।  
 न तासु तृष्णादयितागणोऽपि सन्  
 पिवत्यहो ! शोणितशोणिमभ्रमात् ॥६०॥

हरिन्मणिच्छन्नतलासु मांसल—

प्रभासु पद्यासु विभिन्नचञ्चवः ।

पतन्ति पित्सन्त इहाङ्कुराशया

विशालशालेयविभासु यत्र च ॥६१॥

यदीयविद्याधरराजमण्डली

निलीय तस्थावणिमादिभूतिषु ।

प्रकर्षरूपप्रतिरूपशालिनी—

दमीयसौन्दर्यविनिर्जिताऽपि या ॥६२॥

शौरिस्तदा खचरयौवतनेत्रराजी—

राजीवपंक्तिभिरलङ्कक्रियते स्म तत्र ।

यत्सन्निधावपि निधौ वसतेः प्रयाते

को वा क्वाटघटनां विदधीत धीमान् ॥६३॥

विद्याधरैरपि तदा विदितानुभावे—

रातिथ्यमस्य सुतरां विधिवद्द्वयधायि ।

सन्तः सतां शुभमजर्यमदृष्टयोगात्

प्राप्य हि स्वजननं चरितार्थयन्ति ॥६४॥

तस्मै प्रसन्नहृदयैरपि तैरदायि

या रोहिणीप्रभृतयः खगवन्धविद्याः ।

सद्यः प्रसादवरदा अभवन्नये हि

यद्दुर्लभं सुलभतामपि तद्विभर्ति ॥६५॥

सौभाग्यशेवधिरिति प्रसमीक्ष्य दत्त्वा

भूयः स खेचरकनीः परिणीय बह्वीः ।

इन्दाञ्चकार सफलेन्दुरिव प्रभाभि—

ज्यौत्स्नीनिशि स्वरमणीसुषमाभिरेषः ॥६६॥



पद्मसुन्दरस्वरिविरचित

चन्द्रातपः खग इहास्य वयस्यरूपः

सौहार्दमार्दवनिधिः सविधं सिषेवे ।

शौरिश्च तेन शशिनेव समुद्रपूरः

स्नेहोर्मिमेदुरमना मुहुरुल्लास ॥६७॥

प्रीतिस्तयोः सवयसोर्वचनातिगाऽऽसीद्

ब्रह्मानुभूतिरिव सम्मदशर्मसान्द्रा ।

सख्यं नु तन्मनसि यत्र न भेदवृत्ति—

श्रेतः प्रसादव(य)ति धीप्सति यः स पापः ॥६८॥

तत्रानिशं सहचरीकिलिकिञ्चितादि—

लीलाभिरेष विजहार विहारदेशान् ।

ताभिर्बभौ सुरतसागरसत्तरीभिः

साक्षात्किलेप्य इव कोकिलकाकलीभिः ॥६९॥

सघनजघननीवीबन्धमोक्षं करिष्य—

न्नरुणचरणसेवाचाटुकारं दधानः ।

स्मरशरभरपातव्यस्तलज्जाभिराभि—

नवनिधुवनलीलानर्मकेलि ततान ॥७०॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेयपण्डि-

तेशश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये वसु-

देवप्रस्थानं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥ ॥ छ ॥

## ॥ द्वितीयः सर्गः ॥

अथो हरिश्चन्द्रनरेन्द्रनन्दिनी

बभूव पीठालयपत्तनोद्भवा ।

नृधर्मपूर्वप्रमदाकृतक्षणा

सुरूपसीमा कनकेति विश्रुता ॥१॥

प्रपञ्चयामास किमत्र वागुरां

यदीयलावण्यगुणप्रपञ्चिताम् ।

स कृष्णसारं हरिणं नु कामिदृग्—

द्वयं हि बद्धुं किल कामलुब्धकः ॥२॥

यदीयधम्मिल्लशिरोजमञ्जरी—

निलीनमीनध्वजमीनशैवलम् ।

किमस्ति यद्वा कर्वालिका जगज्—

जनैकजेतुः कुसुमायुधेशितुः ॥३॥

कलापिनां बर्हकलापकेषु य—

न्यधायि निःश्रीकनिकारलक्षणम् ।

करार्धचन्द्रः कचपाशशोभया

निरस्य यस्याः स किलैषु लक्ष्यते ॥४॥

अनङ्गदाशः किमपप्रथत्तरां

जगद्युवस्वान्तविसारनिग्रहम् ।

स कुन्तलानायममुं यदीयसद्—

वपुर्गुणागाधजले किल ध्रुवम् ॥५॥

अथो सुकेशीकचराहुकालिमो—

परक्तभालैन्दवमण्डले सति ।

स्वसिद्धविद्यां यदसस्मरत्स्मर—

स्ततो जगज्जित्वरसत्त्ववानभूत् ॥६॥

सुकैशिकापास्तशिखण्डिनां गणः

किमु त्रपातो गहनं व्यगाहत ।

अथो सुकेश्या मुखचन्द्रमण्डल—

ग्रहाय कैश्यं तम ईप्सति ध्रुवम् ॥७॥

यदीयवेणी भववेध्यकुण्ठिता

स्वबाणवीर्यस्य मनोभुवः किमु ।

गृहीतहेतेरसिरस्त्रनिग्रहे

भटस्य शस्त्रग्रह एव शस्यते ॥८॥

किमु भ्रुवौ यौवनकामयाभिथः

सखित्वसंयोजितमङ्गुलिद्वयम् ।

अथेदमीये हरदग्धमन्मथ—

प्रसूनकोदण्डरजो विजृम्भते ॥९॥

यदानेन्दुस्थितचन्द्रिकोज्ज्वलो

व्यदिद्युतकुन्तलताऽभ्रमण्डले ।

किमेतदीयाननराजचिह्ना

राज यत्कैशिकलाञ्छनच्छलात् ॥१०॥

यदायकेशोपवने यदाननं

सरः प्रभाजालजलौघसम्भृतम् ।

प्रफुल्लसल्लोचनपङ्कजश्रि तत्

किमेतदिन्दीवरितं नभोऽथवा ॥११॥

विदिद्युते यद्विजपङ्क्तिरुज्ज्वला

कषायितस्वाधरवाससाऽऽवृता ।

समञ्जसं कोकनदेऽत्र मौक्तिकं

दधौ प्रवाले किमु वज्रतां विधिः ॥१२॥

यतोऽधरं बिम्बमिति स्फुटान्वया  
 यदीयबिम्बाधरपञ्जिका किल ।  
 प्रवाल इत्येव किल प्रवालतां  
 दधच्च तेनाभिधयैव धिक्कृतः ॥१३॥

श्रवोल्ताऽस्या युवतानियन्त्रणे  
 चकास्ति पाशः किल कामपाशिनः ।  
 रथद्वयं वा ननु यौवनस्मर—  
 द्वयस्य यत्कर्णयुगं विहारिणः ॥१४॥

गिरां रसज्ञाऽऽसनगाधिदेवतो—  
 पवीणयत्याननपङ्कजालया ।  
 तथा हि तस्या द्विजहंसमण्डली  
 गुणानुपश्लोकयतीव सुस्वरा ॥१५॥

मुखेन तस्या ननु निर्जितो विधु—  
 द्विधाकृतात्मा विधुरो यदाधितः ।  
 कपोलबिम्बद्वयरूपभृत्ततः  
 सरूपयत्याननपङ्कजश्रियः ॥१६॥

यदीयनासाद्युतिभिस्तिरस्कृतः  
 शुक्रो विजहे वनवासिभिर्वनम् ।  
 जगज्जिगीषोर्ननु पुष्पधन्वनोऽ—  
 दसीयनासाविवरं निषङ्गति ॥१७॥

न किन्नरी काऽपि न चापि कच्छपी  
 न कोऽपि पुंस्कोकिलकाकलीगुणः ।  
 इति त्रिरेखावलयेन मन्महे  
 स्फुटं सुकण्ठ्या उपकण्ठमास्यते ॥१८॥

तथा च तस्या मृदुबाहुवल्लरी  
 पराजितं किं नलिनं निषेवते ।  
 जलप्रपातं समृणालनालकं  
 पराभवान्मञ्जुलमम्बुमञ्जनम् ॥१९॥

कुमुद्वती यत्करकुङ्कुमलत्विषा  
 जिता द्विरेफस्रजमावहन्यपि ।  
 तपस्यती वै तदभीशुलिप्सया  
 सुमर्षशीतातपवातपातना ॥२०॥

यद्ङ्गुलीपञ्चकमर्धचन्द्रकाः  
 स्मरस्य बाणा युववर्धनोद्धुराः ।  
 ध्रुवं बभुः किंशुकपुष्पधन्वता  
 स माधवस्यास्य विजृम्भतेऽथवा ॥२१॥

अहो ! महोत्पातपरम्परा ध्रुवं  
 सुकामिवर्गस्य विभाव्यते यतः ।  
 यदीयहस्तः स पुनर्भवो बभौ  
 नमः प्रदोषे किल पञ्चचन्द्रकम् ॥२२॥

किमङ्कुरैः परलवितं प्रवालजैः  
 सुपञ्चरागैरुत कोरकायितम् ।  
 यदीयपाणिद्युतिकोटिरुत्थिता  
 प्रमाणबाधां तनुते प्रसञ्जनैः ॥२३॥

अनङ्गतारुण्ययुगं तदीयसद-  
 वपुः प्रभानिर्झरमग्नमुन्नतम् ।  
 कुचेभकुम्भद्वयमाप्य हेलयाऽ-  
 त्यहस्तयत् किं किल रोचिरोघतम् ॥२४॥

यदीयरोमालिलताप्रतानिनी—

सुगुच्छयुग्मं कुचमण्डलद्वयम् ।

विभाति शोचिर्झरसन्न यौवनो—

न्मदेभकुम्भद्वयमुल्ललास किम् ॥२५॥

यदानेन्दुप्रभया वियोजितं

सुवत्सकासारतटोषितं किल ।

अतिष्ठदेतत्कुचकोकयुग्मकं

विधेर्नैदेशो दुरतिक्रमोऽङ्गिनाम् ॥२६॥

किमेतदीया स्मरभिरुपल्लिका—

कुचद्वयी यामधिशय्य मन्मथः ।

स्वकर्णजाहं शरमाकलय्य च

व्यदारयत्कामिकुरङ्गसंहितम् ॥२७॥

तदीयरोमावलिरन्दुकोऽगलत्

प्रभिन्नवक्षोजमहेभगात्रतः ।

ध्रुवं सृणिर्वा स्मरवारणस्य सा

विनीलरत्नद्युतिभङ्गभङ्गुरा ॥२८॥

इयं स्मरारामिकवृक्षवाटिका

स्तनारघट्टस्फुटरोममालिनी ।

जनी सुलावण्यजलाविलान्तर—

स्वनाभिकूपप्रगुणीकृता खलु ॥२९॥

बभार लावण्यसरोऽम्बुपूरितं

स्फुटं रतिप्रीतिनितम्बिनीद्वयम् ।

सुजातरूपस्तनकुम्भयोर्युगं

समाहितेन्दीवरचारुचुकम्

तदीयनाभिः किल कामयज्वनो  
 ध्रुवं हवित्री रुचिहव्यवाहना ।  
 अरालरोमावलिधूमनीलिमा  
 निरेत्युदग्रः कथमन्यथा ततः ॥३१॥

वलित्रयारोहणमंशुवारिभिः  
 परीतमेतच्चनु रोमताकुशैः ॥  
 तदीयनाभीशुभतीर्थमत्र किं  
 चकार कामः कमनीयतर्पणम् ॥३२॥

पुरा विसस्मार विधिर्विधानता—  
 मुरोजयुगमस्य विलानलग्नतः ।  
 विभागतो यन्निरमायि तद्व्यं  
 ततोऽणुमध्या किमभूत्सुमध्यमा ॥३३॥

अणुद्वयं यन्निरधारि वेधसा  
 प्रधानसर्गे तत एव निर्ममे ।  
 तदेतदीयोदरमंशसंशयं  
 व्यनक्ति कोटिद्वयरूढसत्त्वतः ॥३४॥

कटिः कृशाऽस्याः किमु कामकामिनः  
 कलत्रमीण्टे रतकेलिसारताम् ।  
 तदीयचापस्य किमस्ति लस्तकः  
 करस्य मुष्टिग्रहनामियाय यत् ॥३५॥

यदीयकाञ्चीपदचारुचातुरीं  
 निरीक्ष्य हर्यक्ष इयाय काननम् ।  
 वनस्थवृत्त्या निरनुप्लवोऽजहा—  
 त्परानुषङ्गा नु विलज्जितो ह्रिया ॥३६॥

तदूरुयुग्मेन महेन्द्रकुम्भिनः

करो विजिग्ये स्वकरैः सुमेदुरैः ।

ततो नु दृगोचरतः पलायितः

स्वमेव गोपायति यस्त्रपाभरात् ॥३७॥

वने नु रम्भाऽपि यदूरुचारुतां

समाददाना यदभिध्ययाऽवसत् ।

च्छदच्छिदाऽसीमसुसीमघर्मजं

सहिष्णुराभीलमधःशिराः स्फुटम् ॥३८॥

तदीयपाणेः करभस्तदूरुणा

लभेत किञ्चित्सुषमां तदौचिती ।

किमेतदीयेऽथ मनोभुवो बभौ

सुसक्थिनी स्तम्भयुगं जयश्रियः ॥३९॥

तदीयजङ्घायुगलं सुमायुधः

स्वबाणतूणीरविधां विधाय यः ।

पराजितः प्राग्भववैरिणि ध्रुवं

द्विधाऽस्त्रभृत्किं पुनरभ्यषेणयत् ॥४०॥

तदंहियुग्माम्बुजरागरोचिरा—

दधत्पुनः कोकनर्दं प्रमोदते ।

प्रवातकम्पैरिव नृत्यभङ्गिभि—

मुहुर्नरीनृत्यत एव लीलया ॥४१॥

निरुच्यते तत्पदयोर्लवः स्वयं

सपल्लवस्तत्तुलनां करोतु किम् ।

विभाति कल्पः किल तत्क्रमाम्बुजं

ततोऽनुकल्पो ननु पङ्कजावली ॥४२॥



त्वदाननस्पर्धनजातयक्ष्मणः

प्रसीद नम्रस्य तवेति भामिनि ।

कृतागसः किं नखरच्छविच्छलात्

स पापतिस्तत्क्रममिन्दुमण्डलः ॥४३॥

गतेषु पीनस्तनभारमन्थर—

स्पदेषु सा बन्धुरकन्धरानना ।

अशिक्ष्यद्राजमरालगामिनी

मरालमालां किल हंसकस्वनैः ॥४४॥

सुधा सुधा सा मधुरा न गोस्तनी

सिता सिता संयति यद्गिरा ननु ।

सुधा—किराकर्णितया नु कर्णयो—

रपारयत्पारणकं सुधामुजाम् ॥४५॥

तदा तदासेचनकं निदर्शनै

निरुप्य रूपस्य विधिर्विधाय ताम् ।

सुतारतार्थीति पुरा परासित—

व्रतो बभूव श्रुतिविश्रुतः किमु ॥४६॥

प्रमाणशास्त्रे सुतरामधीतिनी

सुगद्यपद्यश्रुततत्त्वसाक्षिणी ।

समस्तविद्याविदुषी बभूव सा

धिया रुचा वा ननु भारती रतिः ॥४७॥

वरो वरोऽस्याः सदृशो दृशोऽथवा

न गोचरश्चेतसि चेत्यचिन्तयत् ।

पिता सुता मे भविता स्वयम्बरा

स्वयं समारम्भि ततः स्वयम्बरः ॥४८॥

अथ स्वसौधाम्रतले नृपात्मजा  
 स्थिताऽऽलिभिः कल्पितकेलिकौतुका ।  
 ज्वलच्छिखावन्तमिवाम्बराजिरान्—  
 मरालमायान्तमिह व्यलोकयत् ॥४९॥

सवेगशाङ्कारितपक्षतिः खगः  
 प्रडीनसण्डीनगतिक्रियापटुः ।  
 क्रमादवातीतरदेतदालय—  
 प्रकाण्डभित्तौ मणिमञ्जुलद्युति ॥५०॥

स रोहितत्रोटिदृगंहिसुन्दरः  
 स्फुरच्छरच्चन्द्रमरीचिपाण्डुरः ।  
 तथा दृशाऽपीयत हार्दसान्द्रयाऽ—  
 निमेषया वैधसपत्रजैत्ररुक् ॥५१॥

किमेष धातुः पदपद्मसन्नभू—  
 विलासशाली कलकण्ठनिःस्वनः ।  
 अथो गिरांदेवतया समीरितः  
 किलैष दध्याविति लोललोचना ॥५२॥

अयत्नलब्धः किल करुपपादप—  
 स्तदस्तु लीलाकलहंस एष मे ।  
 सुदिष्टलभ्ये स्फुटमिष्टवस्तुनि  
 प्रमोदभूमौ प्रयतेत को न वा ॥५३॥

इति ब्रुवाणा वरधर्णिनी निजे  
 कराम्बुजे तं विनिवेश्य लीलया ।  
 चिखेल लीलाकमलेन वेन्दिरा  
 स्वपाणिपद्मेन ममार्जं तत्तनुम् ॥५४॥

निधीयतामालि ! मरालपुङ्गवो  
 निधानवल्लोहितरत्नपञ्जरे ।  
 सखीजने सोत्कलिके तदाहृतौ  
 खगः स गीर्वाणगिरेत्यरीरणत् ॥५५॥

श्रुतं न चातिथ्यमिदं श्रुते क्वचित्  
 प्रियातिथिर्यत्किल चारमर्हति ।  
 सुवृत्तमद्वाचिकमौक्तिकसजं  
 कुरु स्वकण्ठे कलकण्ठ ! मुञ्च माम् ॥५६॥

ततो नरेन्द्रात्मजया विसिष्मिये  
 खगे कुतः स्फूर्तिमियर्ति दिव्यवाक् ।  
 वितर्किताऽहं यदनेन तत्खगः  
 कदाचिदर्थान्तरनिहनुतो भवेत् ॥५७॥

विमृश्य बालेति जगाद रीढया  
 भवान्मया विप्रकृतो न तद्धितम् ।  
 वयं नु मुग्धा हि भवादृशां यतोऽ—  
 नभिज्ञदोषो न विगानमर्हति ॥५८॥

महत्प्रसङ्गेन कदाऽपि चेतनो  
 मनोगतं भावयते मनोरथम् ।  
 विवक्षितं तद्वद मे प्रियंवद !  
 प्रियं पुनर्येन मनः सुखायते ॥५९॥

अथाचक्षे खगराडुनिशामय  
 प्रबुद्धपङ्केरुहचारुलोचने ।  
 इहास्ति विद्याधरपूरपूर्वया  
 श्रिया विनिर्भर्त्सितनिर्जरालया ॥६०॥

खगोश्वरस्तां प्रशशास कोशलः

सुराजनीतिप्रथितैककौशलः ।

सुकौशला तत्तनुजा जगज्जनी—

शिरोमणिः केतकगर्भकोमला ॥६१॥

धवोऽस्ति तस्या यदुवंशपुष्कर—

प्रकाशनाको वसुदेवसंज्ञितः ।

यदाननस्य प्रतिमानमिच्छुकः

शशी परिभ्राभ्यति नित्यमम्बरे ॥६२॥

यदीयवक्त्रप्रभया विनिर्जिता

सरोजराजी मलिनाननालिभिः ।

प्रतापतो यस्य किलोपसूर्यकं

बभार सूर्यः स्वनिकारताऽङ्गनम् ॥६३॥

सुगोपुरद्वारकपाटवक्षसा

जयेन्दिरास्तम्भविसारिवाहुना ।

तृपेण तेनैव हि वीरसूः प्रसूः

स्वीक्रीर्तिविस्फूर्तिपराजितेन्दुना ॥६४॥

स वा यवीयान्जनमौलिशेखरो

महद्गुणारामकरामणीयकः ।

भवत्यथो यौवतमौलिमण्डनं

बधूवरद्वन्द्वमिहास्तु वां सटक् ॥६५॥

तदौचितीमञ्चति पञ्चमस्वरः

पिको यदा जक्षिति चूतमञ्जरीम् ।

फलेग्रहिः स्यान्नरजन्मता द्वयोः

समीहते त्वां सुभगः स चेष्टूवा ॥६६॥

मया यदालेख्यपटे व्यलेखि ते  
 पतिः स नूनं भविता पतिवरे ।  
 जगद् चैतत्प्रतिमानतस्तदा  
 तदागमे त्वं किल लक्ष्येरिति ॥६७॥

तदा तदालेख्यमधीशकन्यया  
 निरीक्ष्य तद्रूपनिमग्नचेतसा ।  
 व्यचिन्ति चेन्मे दयितो भवेदयं  
 तदा नु राकाशशिनोर्युतिः शुभा । ६८॥

अहो ! मनोवेद्यमिवानुवेदकः  
 प्रधावतीष्टं तरसा सुदूरगम् ।  
 अपाणि निम्नाच्च सुधां सुधाकरा—  
 द्यतः प्रियं नाथति नाथमात्मनः ॥६९॥

अपत्रपामन्थरतारतारया  
 दृशा निरैक्षिष्ट तथा नभश्चरः ।  
 उवाच वाचं मृदुमञ्जुभाषिणी  
 कथं घटामञ्चति घीर ! दुर्घटम् ॥७०॥

क्व तावकं दर्शनमेति मादृशां  
 दृशां सपीति क्व च शौरिजन्मनः ।  
 शिखाप्रचुम्बीनि फलानि मूचरै—  
 नं खर्वशाखैः सुलभानि मूरुहाम् ॥७१॥

लज्जाकूपारपूरप्रसृमरपरमामोदमेदस्विवीची—  
 संवीतं विश्वविश्वं मन इह मनुते दर्शनादस्य यन्मे ।  
 तन्मन्येऽणोः समुद्रः कथमिव निरगात्कां मुदं कान्तसङ्गः  
 कर्ता वाचो न वाचो न धिषणधिषणा वक्तुमीशा नु लेशम् ॥७२॥

तत्त्वं सनाथय सनाथ ! इति ध्रुवं मे  
त्वद्वाचिकप्रणयनप्रवणैकवृत्तेः ।

जानीहि कामतरुकामगवीनिकाम—

कामप्रदो हि महतामिह तु प्रसङ्गः ॥७३॥

यो हीणमानसदरीकुहरेऽधिसेते

तं कण्ठकन्दलपथं नु कथं नयामि ।

कौलेयकं खलु विगायति मुक्तलज्जं

लोको ममानुभव तस्य भवानभिज्ञः ॥७४॥

यः प्राणदानपणलभ्यनिभालनो मे

प्रेयानमुं घटयता निरमायि सर्वम् ।

श्लोकश्च पुण्यमपि जीवदयं त्वया तत्—

स्थैर्यां सहे खलु विलम्ब्य यतस्व कृत्ये ॥७५॥

तद्भारतीमधुरसां परिपीय कर्ण—

पात्रेण मञ्जुलगिरा मुहुरप्यवादीत् ।

विचाधरः क्षितिपुरन्दरपुत्रि ! धीरं

चेतो विधेहि करणीयमिदं मयैव ॥७६॥

त्वत्प्रेमस्कन्धबन्धस्त्वदृजुभुजयुगाश्लेषशाखो दली स्यात्

त्वत्पाणिभ्यां त्वदङ्गुह्निद्वितयकिशलयः पुष्पितस्त्वस्मिन्तेन ।

मन्ये त्वन्नेत्रचञ्चद्रुचिरुचिरजलैरालवालैः परीत—

स्त्वद्वक्षोजप्रवेकैः फलित इवतरां शौरिपुण्यामरद्रुः ॥७७॥

कामस्त्वां तन्वि ! धन्वी तनुरुहलतिकाशिञ्जिनीं शुद्धवंश्यां

लब्ध्वा कोदण्डयष्टिं विकलितकुसुमेष्वासवीर्यो नृपेऽस्मिन् ।

मन्ये त्वन्नेत्रबाणव्रणिततनुममुं शौरिविधुं विधाता

त्वन्मध्ये लस्तके वा निबिडतरकरग्राहबद्धैकमुष्टिः ॥७८॥

पद्मसुन्दरसूरिविरचित

शङ्के सुन्दरि ! नाभिसुन्दरदरीमध्यस्थितस्त्वत्कुच—  
 द्वन्द्वार्कटजमण्डिते तनुरुहश्रेणीलताशाद्वले ।  
 त्वद्देहाश्रम एव नेत्रहरिणद्वन्द्वस्पर्शे तप्यते  
 भ्रूण्वा दशनेषु मदनः शौरिं विजेतुं तपः ॥७९॥

शौरिस्ते नेत्रवापीरुचिनलिनचयं मण्डयिष्यन्मदुक्ति—  
 स्फूर्जत्सौरभ्यलुभ्यद्भ्रमर इव सुधास्यन्दिरूपं पिपासुः ।  
 आगन्ता त्वत्सरस्वत्यमृतलहरिभिर्जीवनीयैरविध्नः  
 कर्ता हे ! हेमदाम्नाऽरुणमणिरचनां तेन यूनाहमेव ॥८०॥

मां जानीया भविष्यद्रमणमृदुपदद्वन्द्वकान्तारविन्द—  
 भ्राम्यद्भृङ्गं च चन्द्रातपमिह सुदतीदृक्चकोरद्वयस्य ।  
 भूयात्ते हार्यरूपः पतिरिति विदुषि ! त्वादृशो मन्निदेशात्  
 तेनाल्प्येति दृष्टेर्व्यवदध इव नो मानसान्मानवत्याः ॥८१॥

शौरि चित्तेऽधिकृत्य क्षितिपतिदुहितुर्वाचिकोदारगुम्फं  
 मध्येकृत्य प्रतस्थे खगपुरमचिरात्प्राप विद्याधरेन्द्रः ।  
 पश्यन्ती सा दिशोऽष्टौ विरहविधुरिता शौरिरूपैकताना  
 ब्रवाऽद्वैतरूपं प्रणिहितमनसः सच्चिदानन्दसान्द्रम् ॥८२॥

प्रेमोदन्तं शशंस क्षितिपतितनयाशंसितं शौरये स  
 प्रत्यादिष्टान्यशिष्टिर्गदितमनुवदन्सोऽपि पप्रच्छ भूयः ।  
 शृण्वन्नुद्भिन्नरोमा प्रियवचनचर्यं प्रेमतो नाप तृप्ति  
 प्रेमालापैः प्रियाणां नवरसनिलयैः को नु सौहित्यमेति ॥८३॥

शौरिः संवेशलब्धामपि कनकवतीं स्वं सुधास्वादतृप्तं  
 मेने भूयः शयालोस्तदधिगमधिया मङ्क्षु विद्राति निद्रा ।  
 किं माया शम्बरारेरियमजनि जनी शाम्बरीयैकरूपा  
 नानारूपप्रतीतेर्गनसि नरपतेर्विभ्रमत्वं विभर्ति ॥८४॥

अहं सा साऽहं वा किमुत कनकारूढपदवीं  
प्रपेदे भूशक्रः स्मरकनकमूर्च्छापरवशः ।  
न संवित्ते चित्ते निजपरभिदामेकलयता—  
सुधामग्नस्तस्यां किमलभत सायुज्यनिलयम् ॥८५॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेयपण्डितेश-  
श्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये चन्द्रातपसङ्गमनं नाम  
द्वितीयः सर्गः

---



## ॥ तृतीयः सर्गः ॥

कनकवश्यपि शौरिदिदृक्षया  
व्यवहिते खचरप्रणिधौ भृशम् ।  
शशिकलेव कृशा समजीजनद्-  
विरहसञ्जवरजर्जरविग्रहा ॥१॥

विषमबाणकलादकलावता  
प्रियवियोगकषस्फुटसाक्षिणी ।  
कनकराजिरियं कनकातनुः  
किमुदपादि महाधिनिघर्षणैः ॥२॥

द्विनृपभूः सुविचिन्त्य सुमेषुणा  
किमिति यौवनपालवनी जनी ।  
तनुलता सुतनोर्नु तनूकृता  
दयितयोजनजीवनवञ्चिता ॥३॥

सखि ! दिवा नु बभूव विधेर्दिनं  
ननु निशानिमयो मरुतां निशा ।  
न गणनामपि कालविदोर्विदु-  
र्मम वियोगकृतामिति साऽब्रवीत् ॥४॥

विरहजूतिनिदाघरुजादिता  
यदुकथाहरिचन्दनमण्डनम् ।  
विदधती विषमां रुजमायसा  
हतविधेरहह ! प्रतिकूलता ॥५॥

स्तननिपौ ननु यौवनकारुणा  
कृततरौ विरहानलसङ्गतौ ।  
पुपुषतुर्द्रडिमानमहो ! गुणं  
विगुणता सुतनोस्तनुते तनौ ॥६॥

न विददार हृदुग्रवियोगज—

ज्वलनतः सुतनोर्यदुपाहितात् ।

कुचसुधाकुटयोर्महिमा हिमा—

दतितरामधिको नु विगाहते ॥७॥

नयनयोर्निरगाद्यदधीरिमा

स विललास विलासवतीवपुः ।

किमु जडत्वमियाय तनूरनु-

प्रथितशौरिकथाजलमज्जनैः ॥८॥

विगलितं वलयैः सममश्रु निः—

श्वसनदीर्घतया निशया स्थितम् ।

तनुतया निजजीवितवाञ्छया

विलसितं दुहितुः पृथ्वीशितुः ॥९॥

दिनशशिप्रतिमाननपङ्कजा

तपनशुष्कसरोऽब्जसद्वक्करा ।

हिमनिपातगलत्कदलीनिभो-

रुयुगला समपद्यत साऽबला ॥१०॥

मुखरुचा नु जिगाय यदम्बुजं

तदपि तामदुनोच्छयनीयगम् ।

समयमेत्य महद्विपदां किल

क्वचन हीनबलोऽपि बली भवेत् ॥११॥

तरुतनूरुहजग्यधतो व्यथा

भवति तत्र विलासवतीहृदि ।

यदुजभूभृदसौ स्थितिमाश्रय—

द्यदुत बाधत एव किमदभुतम् ॥१२॥

मृदुतनोर्हृदि बाष्पजलाविले  
 प्रतिकृतिर्यददृश्यत वक्त्रजा ।  
 यदुनृपं किल वीक्षितुमत्रगं  
 व्यधित नम्रमुखी सविधं मुखम् ॥१३॥

श्वसनमारुत एव वियोगज—  
 ज्वलनमुज्ज्वलयत्यमितो हृदि ।  
 विषमबाणमहेध्मसमेधितं  
 कलयति स्म तदन्तरितां दशाम् ॥१४॥

मदनचित्रकरः सुदृशः सुदृक्—  
 किरणतूलिकया किमचित्रयत् ।  
 सकलदिग्बलयं यदुमूर्तिता—  
 मयमयन्तरदान्तररङ्गभृत् ॥१५॥

अनुमितो हृदये विरहानलः  
 श्वसनबाष्पचयैः क्षितिभृदभुवः ।  
 तदपि बाष्पजलानि बलादथो  
 विघटयन्त्यनुमित्यनुलिङ्गताम् ॥१६॥

मृदुतनोर्मृदुहृन्निहितैः सुमै—  
 निजशरैरिव यत्कुसुमायुधः ।  
 ननु दुनोति विनोदयति स्म त—  
 न्मृदुषु मार्दवसञ्ज्वरता नयः ॥१७॥

प्रहरता हृदि तां यदुपुङ्गवः  
 स्वनिलयः स्वशरैरपि चिक्षिणे ।  
 कुत इयं मदनेन निजस्थिति—  
 क्षयकरी कलिता किल धान्वता ॥१८॥

वरयिता मम शौरिनृपात्परो  
 मनसि जातु यदीत्थमचिन्तयम् ।  
 विरहवायुसखे स्म जुहोति या  
 किमिति पाण्डिमशुद्धमभृद्वपुः ॥१९॥

असुतृणानि परासुधवे न याः  
 शिखिनि जुहति यत्तनुदाहके ।  
 विरहवह्निशिखामसहिष्णवो  
 ननु महाघिदुरन्तदरद्रुताः ॥२०॥

विरहदाहशमाय गृहाण या  
 निजकरेण सरोजमुरोजयोः ।  
 द्रुतमपि श्वसितोष्णसमीरणा—  
 दजनि मुर्मुर इत्यजहात्ततः ॥२१॥

मदनयौवनवृष्णिजशासनां  
 बहुनृपां सुतनोर्नु तनूपुरीम् ।  
 तनुरुचः करदानतया जहुः  
 किमजनिष्ट कृशा नु कृशोदरी ॥२२॥

किमुत वृष्णिजहत्सुमुखीमुखं  
 व्यधित यद्विधुकान्तमतिभ्रमात् ।  
 इति न चेत्तदिदं हि विधूदये  
 किमु दृशोऽस्रपयः समदुद्रवत् ॥२३॥

यदिदमैन्दवमण्डलमात्मम्—  
 विजयकृद्दहनास्रमिवाक्षिपत् ।  
 तत इयं स्रवदश्रुजलच्छलात्  
 तदपनुद्वरुणास्रमुपाग्रहीत् ॥२४॥

मलयजैरनिलैरनिलास्रता—

मिव किमु प्रजिघाय मनोभवः ।

हृदिकृतैर्नु विसैरियमप्यहो !

पवनभुक्प्रतिशस्त्रमुपाददे ॥२५॥

जलदजालजलैर्नु जलास्रता—

मतनुना प्रहितां प्रतियत्यसौ ।

किमुत दीर्घतरश्वसनानिल—

प्रतिघशस्त्रमिवादित सादरम् ॥२६॥

किमबलाहृदि शङ्कुयुगं स्मरो

विरहितापि च जीवनमप्यहो ।

स निचस्वान कुचद्वितयच्छला—

दपि बलात्तदिति प्रमिमीमहे ॥२७॥

न खलु चन्दनचन्द्रहिमानिला

जनमनः सुखयन्ति विना प्रियम् ।

ज्वलति वा कनकाहृदि तस्थिवा—

निति विमृश्य यदुः किमनाकुलः ॥२८॥

विरहतापिनि मे हृदि वल्लभो

नवयुवा नवनीततनुर्यदा ।

प्रखरसञ्ज्वरतो नु विलीयते

सखि ! तदा मम का गतिरायतौ ॥२९॥

सखि ! कलङ्क इति स्फुरति स्फुटं

विरहिणीवधपातकपङ्किलः ।

ननु विधौ विधुरामपि मां पुन-

र्दहति निष्करुणः किरणोल्मुकैः ॥३०॥

करतले स्वकपोलतलं दध—

त्यविरतं सवदश्रुपृषत्कर्णैः ।

स्वभुजवह्निलमसिञ्चयदान्तर—

प्रभुदवग्रहशोषितविग्रहाम् ॥३१॥

सुदति ! ते हृदये दयितः स्थितः

किमु विषीदसि तत्परिदेवनैः ।

नयनयोः स बहिर्नहि गोचरः

सखि ! ततो मनुते न मनोमुदम् ॥३२॥

इति विलप्य मुमूर्च्छं मुहुर्मुहु—

विरहज्ज्वरसञ्ज्वरजर्जरा ।

जलजशीतजलव्यजनानिलै—

रियमुपास्यत साधुवयस्यया ॥३३॥

अथ वयस्ययुतो यदुनन्दनो

नु समया पुरगोपुरमासदत् ।

स कनकाजनकार्पितगौरवः

सुखमुवास निवासमनुत्तमम् ॥३४॥

तत्राक्रीडेशोकनव्यप्रवाला—

नीक्षाञ्चक्रे शौरिरस्तोकलोकः ।

आन्त्या भूभृन्नन्दिनीपाणिपद्म—

प्राग्रप्रेङ्खद्रोचिषामेकतानः ॥३५॥

तच्छाम्पेयं चारुचूडाग्रजाग्र—

द्भ्राभ्यद्भृङ्गं कुङ्कुमलं मन्यमानः ।

दग्धुं कामिस्वान्तमुच्चैः पराग—

ज्वालाजालं धूमकेतुं ददशं ॥३६॥

सद्गन्धाख्या गन्धकल्यावभासे

चूडाचुम्बिन्यग्रतश्चम्पकद्रोः ।

लीनालीनामञ्जनव्याजतो या

पञ्चेषोः किं दीपिकेव ध्वजिन्याः ॥३७॥

दृष्ट्वा पुष्पं पाटलं पाटलायाः

शौरिर्मेने कामकाण्डीरतूणम् ।

तस्यामोदोद्गारसारं स जिघ्रन्

मूर्तभ्रान्ति भीलुकः सन्वभार ॥३८॥

तेनादर्शि स्फीतशालो रसालो

गुञ्जदुमृङ्गक्रोधहुङ्काररावः ।

विभ्राणो यो भर्त्सनां विप्रयुक्ता-

न्वातोद्वेल्लन्मञ्जरीमञ्जुहस्तैः ॥३९॥

सम्भाविन्या बल्लभायाः कुचाभान्

कुम्भान्कामस्याभिषेकाय हैमान् ।

शूपोऽद्राक्षीद्दाडिमद्रोः फलानि

वृत्तान्यारामश्रियः कन्दुकानि ॥४०॥

गन्धान्धमरकुलाकुलं वियोगि-

स्वान्तिथः क्रकचदलश्रियं दधानम् ।

अस्पृश्यं हरचरणैः सकल्मषत्वाद्

वाष्णैः कथमिव केतकं ददर्श ॥४१॥

खण्डेन्दुप्रतिभशिलीमुखं पलाशं

रक्ताक्तं विरहिजनाध्वनीनबेधात् ।

मेने यन्मनसिजधन्विनो महीप-

स्तन्नूनं नयनपथं निनाय नैव ॥४२॥

आश्लिष्टा व्रततिततीः सुगन्धवाहै—

श्चुम्बदभिर्नवमधुपैः प्रवेपमानाः ।

उदभिन्नस्मितमुकुलाः सुपल्लवोष्ठाः

सम्वीक्ष्य क्षणमिव सञ्जहर्ष शौरिः ॥४३॥

व्याकोशद्रुमकुसुमेषु किं परागः

सम्प्लुष्टस्मरशरभूतिविभ्रमत्वम् ।

व्यातेने यदुत वियोगिमानसानां

स्यादन्धंकरणपटुर्नृपो निदध्यौ ॥४४॥

सरुया स व्यतनुत तत्र केलिमेवं

सौहार्दप्रगुणमनोविनोदकेन ।

साचिव्ये खलु हृदयङ्गमैर्वनं वा

स्वर्भोगाद्भुततमशर्मनर्म धत्ते ॥४५॥

तत्रावातरदथ गुह्यकेश्वरस्य

प्राग्मांशुप्रतिहतहेलिमण्डलश्रि ।

आतोद्यध्वनिविजिताम्बुदं नृपोऽस्था—

दुदग्नीवः क्षणमिव वीक्ष्य पुष्पकं तत् ॥४६॥

श्रीदस्तं किल निकषा विमानमारा—

दाहृत्य प्रणयमनीषयाऽऽजुहाव ।

वाष्णैयस्तमुपनिषेदिवानुपेया

साङ्गत्ये ननु सुहृदां विनम्रतैव ॥४७॥

स्वातिथ्यं कशिपुमनिद्य ! नार्थयेऽहं

नौशीरं भवत इतीव मेऽर्थनीयम् ।

कर्तव्यं मदनुनयेन दूत्यमेकं

पौलस्त्यो यदुतनयं प्रतीत्यवादीत् ॥४८॥



अश्वाऽश्वं जवनमथो मृगेन्द्रशा वं  
 सिंही गौर्जनयति धुर्यसौरभेयम् ।  
 ऐन्द्रीदिग्दशशतरश्मिमुग्रमूर्ति  
 वीरं त्वां ननु भुवि वीरसूः प्रसूस्ते ॥४९॥

माकन्दश्चलदलपारिभद्रमुख्याः  
 सच्छालाः कपिपिककाकजीवनीयाः ।  
 कल्पद्रुः सदयदिवौकसां प्रकाम्यः  
 स श्लाघ्यो जगति भवानिवापरे किम् ॥५०॥

पर्जन्यः किल शितिकण्ठकण्ठनीलो  
 विकृष्टस्तनितरवोऽर्णसां पृषन्ति ।  
 द्वित्राणि प्रकिरति चातकस्य चञ्चौ  
 सा दिग्सा किमुत कदर्यतैव नूनम् ॥५१॥

साम्राज्यं वसुवपुरङ्गनादिहर्म्यं  
 वस्तूनि प्रमदकराणि गत्वराणि ।  
 संचिन्वन्नसुभिरनश्वरं यशः स्वं  
 तृण्यावदगणयति तानि यन्महेच्छः ॥५२॥

भूयांसो नृपतिलकास्त्वदन्ववाये  
 येऽर्थिभ्यः सनिजनिपूर्तये धुरीणाः ।  
 तद्वंश्ये भवति किमद्भुतं यदा सा  
 सर्वाशा निजयशसा समापय त्वम् ॥५३॥

भ्रूभङ्गो वदनदृशोस्तिरोहितत्वं  
 दृग्लक्ष्येऽर्थिनि मनसो विलक्षता च ।  
 दोषास्ते सति हि विदूषयन्त्यभिरुयां  
 मा भूस्त्वैस्त्वमपि कलङ्कितः शशीव ॥५४॥

सन्त्युग्रा युधि शतशोऽपि सांयुगीना  
 दातारो जगति परःशताः श्रुता ये ।  
 भोक्तारो भुवि रसिकाश्च भूरिशोऽन्ये  
 द्वित्रास्ते परकरणीयवद्धकक्षाः ॥५५॥

यच्चिन्तामणिरुपलो द्रुसः सुरद्रु—  
 नार्थित्वं विफलयति स्म सोऽर्थिनोऽपि  
 निष्णातस्त्वमलमलं विलम्ब्य कार्ये  
 मन्दारः कमितरि मादृशोऽस्यवन्ध्यः ॥५६॥

इष्टाप्त्यै सुरनिवहान्विशोऽर्थयन्ते  
 तेऽपि त्वां समयवशेन मादृशश्च ।  
 तत्तूर्णं क्षितिपसुतोपयामसिद्धयै  
 दूत्यं मे सुभगशिरोमणेऽभ्युपैहि ॥५७॥

तेनेहृग्धनदवचो निशम्य सम्यगू—  
 वैदुष्यं किल विबुधेषु नेत्यचिन्ति ।  
 तस्या मय्यनुनय एव मे च तस्यां  
 तामेषोऽभिलषति मन्मुखेन दूत्यात् ॥५८॥

स्मृत्वा यां क्षणमपि मूर्च्छितोऽतिमोहा—  
 दुद्भ्रान्तश्चकित इवापनिद्र एव ।  
 तद्दृष्टौ कथमवहित्थयाऽस्मि गोप्ता  
 भावस्यालपनविधौ कथं पभूष्णुः ॥५९॥

प्राणेभ्यः शतगुणपण्यभूमसीमा  
 या तामप्यभवमहं वरीतुकामः ।  
 तद्दूत्यं मम वचनीयतैव किं वा  
 हीभारादवनतकन्धरो ब्रवाणि ॥६०॥

जीवातुर्मम किल जीवितस्य याऽऽस्ते  
 तामेष व्यवहितवञ्चनादभीप्सुः ।  
 नाश्वासः सुहृदि न सौहृदेऽदसीयेऽ—  
 प्यौचित्यं निकृतिपरेषु वक्रतैव ॥६१॥

गीर्वाणा मम दयिताप्तयेऽर्थनीया  
 मामेव प्रणिधितयाऽपि तेऽर्थयन्ते ।  
 अर्थार्थी प्रणिहितकृत्यसिद्धिहेतोः  
 सन्मानक्षितिमपि गौरवं मिमीते ॥६२॥

यद्वाऽस्तु प्रणयविहायिताधमर्णो  
 यक्षेशः किमुत ममोत्तमर्णतैव ।  
 मत्कृत्या करणिरथो परार्थसिद्धये  
 स्वीचक्रे तदिति विमृश्य शौरिराह ॥६३॥

मादृक्षः कथमनृणीभवेन्नृडिम्भो  
 नाकिभ्यो नयनपथातिथी भवद्भ्यः ।  
 यद्वा मे प्रतनतपः सुरद्रुमाणां  
 साफल्यं यदजनि साधुदर्शनं वः ॥६४॥

इज्याभिर्यमनियमोपहारमन्त्रै—  
 राराध्याः स्मरणहविष्यतर्पणैर्वा ।  
 प्रत्यक्षास्त इति ममापि दिष्टमिष्टं  
 यत्स्वाहाभुज इह मानिनोऽर्थयन्ते ॥६५॥

मन्दारान्यदवगणय्य दातृमुख्यान्  
 मय्येव प्रथितयशः प्रदातुकामाः ।  
 स्वर्लोकावतरणमेव देवपादा—  
 श्वक्राणाः फलितमहो ! मद्गुणपुण्यैः ॥६६॥

आदित्या जगति सुधान्धसः सुधैव  
 प्रत्यक्षा कनककुटुब्धयाऽभिदावत।  
 यत्प्रादुर्भवन्महो ! दृगोकपद्यां  
 तच्चक्षुर्भवतु निमग्नमेव तस्याम् ॥६७॥

त्वत्प्रेक्षामुकुरतले जगत्समग्रं  
 सङ्क्रान्तं किमु कथनीयमस्ति मेऽस्य !  
 यद्विज्ञापयति शिशुस्तथाऽपि मादृक्  
 'श्रद्धेयं' शुकस्तवद्विपाकहृद्यम् ॥६८॥

यास्यामि द्रुतमुपमृद्य विघ्नसङ्घान्  
 शुद्धान्ते कथमपनीय यामिकादीन् ।  
 यः पुम्भिर्दुरविगमोऽवरोधगर्भः  
 सुप्रापो युवतिजनैश्च सौविदरुलैः ॥६९॥

मां वीक्ष्य क्षितिपसुता वरीतुकामा  
 मन्दाक्षप्रणतशिरोधरा भवित्री ।  
 ब्रूता हे कथमुत वाचिकं नु तस्याः  
 संशीतिर्मनसि विगाहते ममेति ॥७०॥

इत्युक्त्वा यदुतनयः सजोषमास  
 प्रारेमे गदितुमथोऽस्य राजराजः ।  
 प्रेष्याद्यैर्दुरभिभवोऽवरोधचारेऽ—  
 प्यन्तर्धिर्भवतु ममानुभावतस्ते ॥७१॥

प्रस्थास्नोस्तव सविधं नृपात्मजायाः  
 प्रत्यक्षा भवतु तनुः परैरलक्ष्मा ।  
 स्वीकुर्वन्धनदवचो यदुः प्रतस्थे  
 देवानां ननु मनसैव कर्मसिद्धिः ॥७२॥

पौरीणां नयननिभालनानि पश्यन्  
 हर्म्याणां कनककरीररम्यमूर्धनाम् ।  
 पौराणां चतुरिमचारुतामभिरु यां  
 वाष्पेयो नृपसदनातिथित्वमापत् ॥७३॥

उत्तानध्वजपटकुम्भतोरणाली—

सद्वात्याविधुतवितानवन्दनस्रक् ।  
 चन्द्राश्मप्रघटितभासुरप्रघाणा -  
 सिंहद्वाःस्थित इह तां निपीय शौरिः ॥७४॥

उद्दामद्विरदकपोलकर्णपाली--

प्रञ्च्योतन्मदजलसिक्तभूमिभागम् ।  
 पादातैस्तुरगरथाश्ववारवारैः  
 सङ्कीर्णं नृपतिकुलाजिरं ददर्श ॥७५॥

शस्त्रास्त्रप्रगुणितरक्षिवर्गसज्जां

प्राक्कक्षां निकृतपरप्रवेशचाराम् ।  
 व्याधामव्यतिकरधामवज्रनद्धां  
 प्राविक्षद्युवतिकुलाकुलां स सद्यः ॥७६॥

मूरेषा ननु कनकापदार्पणेनो—

द्यलीलाललितविहारिणा कृतार्था ।  
 अञ्चामि स्वनयनवारिजैरिवैता—  
 मद्राक्षीद्विकचदृशेति वास्तुमेषः ॥७७॥

माणिक्यकुट्टिमवितर्दिषु वामनेत्राः

कक्षान्तरे च ददृशे स्मरभिल्लपल्लयः ।  
 उद्यन्मृगाङ्कशतमण्डलदर्शनीयां  
 सायं नमःश्रियमिव स्फुटमुद्रहन्त्यः ॥७८॥

दौवारिकस्य परविप्रतिषेधवाचा

त्वं कोऽस्यरेऽपसर सोऽपि विशङ्कमानः ।

प्रीवां विभुज्य चकितः क्षणमित्यपास्त—

शङ्कः परामथ विवेश निशान्तकक्षाम् ॥७९॥

निर्यूहबन्धुरविटङ्कविनीलपक्षि—

छेकोक्तिपल्लवितताण्डवगेयरम्यम् ।

तद्गर्भधाम विचचार नदन्मृदङ्ग—

रङ्गत्कृशाश्विगणमाशु यदुर्विशङ्कः ॥८०॥

चर्चिक्यमेव दधतीं यदसंवृताङ्गीं

काञ्चिद्विलोक्य पिदधे दशमात्मनीनाम् ।

नासीरचारिजनयौवतघट्टनेन

सद्यश्चमच्चरिकरीति मुहुः स्म शौरिः ॥८१॥

शिःश्लेष काचिदपरा स्वभुजोपपीडं

काचिन्नखैर्ब्रणयति स्म समापतन्ती ।

काऽप्यङ्गरागभरविच्छुरिताङ्गमेनं

तत्रोपभुक्तमिव चक्रुरदृश्यमेताः ॥८२॥

पस्पर्श काऽपि सुतनुस्तनुहृष्टरोमा

शोभां बभार करकन्दुकमाक्षिपन्ती ।

सङ्घट्टय शौरिमथ तां परिवृत्यलग्नं

भ्रान्ता समीक्ष्य न चिखेल परा सखीषु ॥८३॥

लीलावतीललितविभ्रमहावहेला—

कल्लोललोलितमपि प्रभुमानसं न ।

कालुष्यमाप सति वैकृतसम्भवे हि

न क्षोभमेति धुरि धीरधियां स धन्यः ॥८४॥

तस्याङ्गसङ्गमधिगत्य परा मृगाक्षी  
 भूयस्तदङ्ग्रहपदवीमदवीयसी ताम् ।  
 नीराजनां विदधती नयनारविन्द—  
 प्रेङ्खोलनैरिव ससम्भ्रममेकताना ॥८५॥

तच्छायमेव निपपौ निजयष्टिभेद—  
 मुक्तामणिष्वनुकृतं मृगशावकाक्षी ।  
 अप्येकपत्न्यभिसमीक्षणजातलज्जा  
 स्वां सङ्ग्रहार दृशमुदगतरोमहर्षा ॥८६॥

भ्रान्त्वा विशङ्कितमना उपकारिकायां  
 सौधाङ्गणे समपनीय परिश्रमं सः ।  
 आल्लिख्य तत्र कनकामथ सन्दिदेश  
 यावद्द्रुतं कलकलैर्बुधुधेऽङ्गनानाम् ॥८७॥

स्तम्भैर्हरिन्मणिमयैः शुचिपद्मराग—  
 भित्तिप्रभाभिरभितः स्फुटचाकचिक्यम् ।  
 तद्रामणीयकमणीरमणीयचित्र—  
 मभ्रङ्गकषं नृपतिधाम समारुरोह ॥८८॥

तत्र स्फुटस्फटिकचत्वरमध्यमग्न—  
 मार्तण्डमण्डलसत्प्रतिमानरभ्ये ।  
 प्रासादशैलशिखरे कनकामुखेन्दु—  
 मुद्यत्तमं कलयति स्म सविस्मयोऽसौ ॥८९॥

तस्याः सुधामधुरमद्भुतधामरूपं  
 लावण्यवारिधिभवं सुदृशा निपीय ।  
 दिव्यानुभावत इहाविरभूत्स भूयः  
 सौभाग्यशेवधिरनाकलनीयशक्तिः ॥९०॥

रुद्धाऽऽलिभिः सकलिकिञ्चितनर्ममर्म—

वक्रोष्ठकालुरितकोकितषु कोविदाभिः ।

केलिववणत्कनककङ्कणकिङ्किणीका

तेन व्यलोकि कनका कनकावदाता ॥९१॥

पुंसो मया प्रतिकृतिर्ददृशे ब्रुवाणः

कोऽपि श्रुतः किमपि मे भवदङ्गलमम् ।

न्यासोऽत्र कोऽपि पदयोः पदमित्थमेष

पार्श्वद्यौवतगिरामशृणोत्प्रचारम् ॥९२॥

दृष्टामपि क्षितिपतेस्तनयां समक्षां

भ्रान्तिस्मृतामिव जडीभवदङ्गवृत्तिः ।

मेने पराऽपि यदुमक्षसमक्षलब्धं

संवेशदृष्टमिव तं समुदीतमोहा ॥९३॥

निर्बाधरूपमनयोर्नु मिथोऽनुराग—

स्तम्भेन चित्रलिखितप्रतिमं बभासे ।

प्रत्यग्रमार्तघटवज्जलमीक्षणेऽङ्ग—

लावण्यमेव पपतुः स्फुटलब्धबोधे ॥९४॥

उन्मीलितं तमथ ता ददृशुः सुनेत्रा

उन्मीलितेक्षणधियः पुलकाङ्किताङ्गाः ।

कादम्बिनीपटलनिर्गतचन्द्रबिम्बं

वीश्रयेव दृक्प्रसृतिभिर्निपपुः समेताः ॥९५॥

सद्यो विभेद कनकाऽऽननपद्ममुद्रा

वाष्णैश्चमञ्जुलमुखांशुमदीक्षणेन ।

क्वापहनुते मुदिरमण्डलमंशुमालि--

तेजः क्रियद्विबुधगीः सुभगं भवन्तम् ॥९६॥



कोणे दृशः पतति तत्र महीमघोनि  
 तस्याः प्रमोदभववाष्पसगद्गदोक्तैः ।  
 सांदृष्टिकं फलमिवाशुगमाततज्ये  
 स्वं संदधे धनुषि पुष्पशरस्तदैव ॥९७॥

सव्यापसव्यशरमुक्त बभूव कामो  
 लीलाचलैर्मृगदृशो नु दृशोः कटाक्षैः ।  
 प्रापय्य वृष्णिजशरव्यमुदीतरोम--  
 हर्षव्रणाङ्किततनुं सहसा चकार ॥९८॥

तस्यास्तदङ्गमुकुरे सुनिखातदृष्टिः  
 कष्टान्निमिष्य समियाय परप्रतीकम् ।  
 स्याद्विघ्ननिघ्नमतिहृद्यमपीह वस्तु—  
 सर्गे निसर्ग इति चेत्किमु तत्र चित्रम् ॥९९॥

तद्वर्ष्कान्तिभरनिर्झरमज्जने स्म  
 खञ्जायते नयनखञ्जनयुग्ममस्याः  
 तत्पञ्चशाख मुखपाणिसरोरुहेषु  
 चिक्रीड केलि कमनीयगतागतेन ॥१००॥

साऽऽनन्दथूपनतसान्द्रसोर्मिमन्ना  
 जातु भ्रमश्रमविमोहवशा वशावत् ।  
 तन्मुक्तकामुकदशा द्वयभाविभोगं  
 यादृच्छिकं नु बुभुजे यदुदर्शनेन ॥१०१॥

प्रष्टुं न शेकुरिति ताः कथमित्थमागा—  
 स्त्वं कोऽसि मन्मथशरव्रणितैर्विहस्ताः ।  
 अभ्युत्थिति विदधिरे न तदातिथेर्यां  
 व्रीडाविनम्रवदनाः प्रमदा हि मुग्धाः ॥१०२॥

उत्पिञ्जलत्वमपहाय विधाय धैर्यं—

मुत्थाय सन्नतमुखी स्वयमभ्युवाद ।

पाद्यं नतेन शिरसा सुविधेयमर्घ्यं

सूक्तामृतैरतिथये मयि तन्न घाण्टूर्यम् ॥१०३॥

सुस्नातकाः किमिह ते न च येऽतिथिभ्यः

पादोपहारजलमासनदानपूर्वम् ।

न प्राञ्जलेन मनसाऽञ्जलिसञ्जनं वा

कुर्युः सगौरवमुदञ्चितरोमहर्षाः ॥१०४॥

तत्सिंहसंहननं मे चरितार्थयेदं

सिंहासनं निजपदाम्बुजविश्रमेण ।

नो दूयते तव मनो नलिनम्रदिम्नो

विद्वेषिणः पदयुगस्य विहारचारैः ॥१०५॥

निःश्रीकमेव कृतवान्कतमं व्यनीत्य

देशं पुरस्य यदिहाभरणीबभूव ।

कामं स्वनाम मयि च प्रकृते निवेद्यं

प्रायो हि नामपदमेव मुखं क्रियासु ॥१०६॥

द्वारस्थसौविदसुरक्षितसौधगर्भे

यत्स्वैरसञ्चरणमग्निशिखाप्रवेशः ।

प्रागल्भ्यमस्मि भवतो ननु निर्णिनीषु—

स्तत्संशयालुमनसा वदतां वरेण्य ॥१०७॥

यद्रक्षिलक्षद्वगलक्षित इत्थमागा

भूयस्त्वदाचरितसच्चरितानि बीजम् ।

सौन्दर्यतर्जितरतीश सुसङ्गतोक्तै—

र्मत्कर्णयोर्घटय पारणकं सुधायाः ॥१०८॥

सा वाग्जनिर्ननु मुधा विबुधान्समेत्य  
 न स्तौति मत्सरितया किमुतारूपजल्पा ।  
 तस्यापि जन्म च धक्त्कुशलद्रुहो यः  
 प्रादुःकरोति न सतोऽपि सतां गुणौघान् ॥१०९॥

तन्मां मुहुस्त्वरयतीह भवदगुणौघो  
 रुच्यं दृशोः सुभगसुन्दरदर्शनं ते ।  
 संपिण्डितं नु सुधया किमु चन्द्रिकाभिः  
 पुञ्जायितं मधुरसाभिरभिद्रुतं वा ॥११०॥

हुत्वा वपुर्गिरिशभालदृगाश्रयाशे  
 मन्ये पुनर्नव इवास मनोभवस्त्वम् ।  
 सौधाकरं घटयति स्म विधिर्विधातुं  
 बिम्बं त्वदाननरुचः प्रतिमानमेव ॥१११॥

मुख्यो भवन्मुखमृगाङ्क इहैव साक्षात्  
 त्वत्कृष्णसारकचनेत्रमृगस्य सेव्यः ।  
 दृश्येतरत्वभजनान्ननु पक्षयोर्यो  
 गौणः शशी सकलुषः प्रतिभाति भाभिः ॥११२॥

गुम्फो गिरामधरयत्यपि गीःपति ते  
 गाम्भीर्यमेव गलहस्तयतीव वार्द्धिम् ।  
 औदार्यमेव लघयत्यपि कर्णमुख्यान्  
 सर्वातिशायिचरितं तव चारुमूर्ते ॥११३॥

स्वर्गी भवान्किल तदा समलङ्कृता द्यौ-  
 रुस्तम्भितो भवसि भोगिषु भोगिलोकः ।  
 चेन्मानुषो वसुमती ननु रत्नगर्भा  
 त्वं विश्वविश्वजनमौलिकिरीटरत्नम् ॥११४॥

वास्तोःपतेरपि परिद्रढिमानमुच्चैः  
 स्वैश्वर्यवीर्यविभवेन तृणीकरोषि ।  
 तत्तस्य कस्य कृतिनः सदनातिथित्व—  
 मापत्पदाम्बुजयुगं तव तच्छृणोमि ॥११५॥

एवं सुधारसकिरः सुगिरः सुदत्याः  
 कर्णाञ्जलीभिरभितः प्रमदान्निपीताः ।  
 तद्वाग्निसर्गमिषकामशराः सपुङ्खाः  
 प्रावीविशन्यदुपतेर्हृदयं निरस्ताः ॥ ११६॥

अध्यास्य वामनयनापितभद्रपीठ—  
 मुख्याय मान्मथशरं स पुरश्चकार ।  
 धैर्यं यथावसरमेव वितायमाना  
 भावाः प्रयान्ति खलु गौरवमत्युदारम् ॥११७॥

प्रेमप्रमोदभरमेदुरलोचनायां  
 तस्यामथोपरतवाचि स वाचिकानि ।  
 स्वस्वामिनो धनपतेः स्फुटचाटुकार  
 सान्द्राणि सानुनयमेवमुदाजहार ॥११८॥

आतिथ्यतो विरम पीठमलङ्कुरुष्व  
 त्वद्भाविभर्तृधनदस्य च मां नियोज्यम् ।  
 दृत्याय सङ्गतमबैहि वुवूर्धुरस्ति  
 श्रीदः श्रिया निजदृशोस्तमुरीकुरु त्वम् ॥११९॥

विस्मापयन्ति तव शैशवतोऽपि चेतः  
 कौबेरमब्जसुकुमारतराङ्गि ! रङ्गात् ।  
 त्वद्रामणीयकगुणा रमणीयतार—  
 हारा इव स्म परितः परिरब्धपूर्वाः ॥१२०॥

त्वद्यौवनेन सममीशसखस्य हार्द—

मध्यारुरोह धनुषीव गुणः स्मरस्य ।

सञ्चारिकापरिजनात्परिपीय गूढात्

त्वत्संकथां विदधतो मुदमान्तरेण ॥१२१॥

त्वद्विप्रलम्भपरितापजवैमनस्यात्

तरुपे विल्लनहरिचन्दनपल्लवानाम् ।

निद्राति न क्षणमहो ! फलदान्सुरद्वन्

निःपल्लवानपि चकार निकारनिधनान् ॥१२२॥

चेतः प्रमोदयति चैत्ररथं न जातु

पुंस्कोकिलस्य किल कोमलकूजितेन ।

नो चन्द्रचूडचरणौ शरणीकरोति

यश्चन्द्रचण्डकरचण्डतरप्रतापात् ॥१२३॥

किं चालकापुरि पुनर्भुवनानि यानि

तस्याक्षरच्युतकवन्ति विभोर्विभान्ति ।

आत्मानमप्यहह ! वैश्रवणं सुनेत्रे !

वेद त्वया विरहितं बत वर्णशून्यम् ॥१२४॥

पुष्पेषु मार्गणगणप्रहतस्तदानीं

सख्यं दधे स्मरहरेण स किन्नरेशः ।

पुष्पैस्तमर्चयति नो जगदर्चनीयं

पुष्पोत्करान्मृदुतरादपि कांदिशीकः ॥१२५॥

स्वर्गापगाकमलिनीविसतन्तुरन्तः

सन्तापयत्यपि तुषारतरो मदीयान् ।

त्वन्मञ्जुबाहुलतिकाप्रदिमोपमेयो

वैचित्र्यमीश्वरसखस्य क्रियद्ब्रवीमि ॥१२६॥

मन्दारमञ्जरिपरागकणान्वितन्वन्  
 प्रालेयशैलपरिशीलनशीतलोऽपि ।  
 मन्दानिलो न च मनो धृतयेऽस्य दुःस्थे  
 चेतस्यशेषमविषह्यमहो ! नु चित्रम् ॥१२७॥

लावण्यवारिधिदृशामपि किन्नरीणां  
 नेत्रन्धयः स्वनयनैरनिमेषविन्दैः ।  
 तार्तीयभागमपि पुण्यजनेश्वरोऽसौ  
 तृष्णक्लिपपासति दृशस्तव चारुनेत्रे ! ॥१२८॥

भाविस्वयम्बरवरा जगतः प्रतीता  
 लोकश्रुतिः श्रुतचरा तव तन्वि ! तेन ।  
 सन्देशपत्रमिह मामिव सञ्चरिष्णुं  
 त्वरुलाभचाटुकृतये विनियुक्तवान्सः ॥१२९॥

आश्लिष्य स त्वयि भृशं सकुचोपपीडं  
 मृद्वङ्गि ! सन्दिशति सप्रणयं नृधर्मा ।  
 स्वाङ्गैरनङ्गदहनोषितमेनमेहि  
 निर्वापयाशु परिरम्भतुषारसारैः ॥१३०॥

पुष्पायुधोद्धुरनिषादशरापमृत्यो—  
 स्त्रायस्व मां तरलतारतरङ्गिनेत्रे ! ।  
 यद्वाऽस्तु तावककटाक्षशिलीमुखानां  
 पातैर्मृतिस्तु सुषमा तदनुग्रहो मे ॥१३१॥

सन्त्येव यद्यपि परे बहुशस्त्वदीय—  
 लीलाकटाक्षलहरीलवलुब्धचित्ताः ।  
 मां प्राणमात्रपणदानपरं दयस्व  
 स्वीकारतोऽप्यनुगृहाण तथाऽपि भीरु ! ॥१३२॥

नाकस्त्वया यदि परिष्क्रयते तदानीं  
 सौभाग्यकरूपतरुरेव फलेग्रहिर्मे ।  
 भूःसङ्गता यदि तदप्यवतारयामि  
 द्यामत्र तावकमनःप्रमदाय तन्वि ! ॥१३३॥

अन्तः सनाथयसि मे हृदयं चिरस्य  
 सद्यः प्रसह्य च बहिस्तदलङ्कुरुष्व ।  
 हारायतां तव भुजद्वितयाङ्गपाली  
 वक्षस्यथ स्तनयुगं तरलायतां मे ॥१३४॥

आप्यायनाय नवतामरसैः सपर्या  
 सम्पादिता न विबुधानपि नो भवत्या ।  
 किन्तु त्वदङ्घ्रिह्रसरसीरुहशीलनेन  
 मूर्द्धा सुपूजित इवाऽस्तु मुदेकहेतुः ॥१३५॥

किं किन्नरीषु रतसिन्धुतरीषु ताप-  
 स्त्वद्विप्रयोगजनितः शममेति मेऽस्य ।  
 अप्यम्बुजा खलु तृषा मधुरादतीव  
 न क्षीरपाणत इह प्रशमं प्रयाति ॥१३६॥

दिव्यां सुधामधरयत्यधरः सुधैव  
 विश्राणयामि किमु तेऽन्तरतर्पणाय ।  
 यन्निर्जिगाय शशिमण्डलमाननं ते  
 कर्ताऽस्म्यहं ननु कदाऽस्य मुदा सपीतिम् ॥१३७॥

सान्निध्यतः सुतनु ! नोऽमरतां लभस्व  
 तन्नौचितीचणमिदं हि वचो विभाति ।  
 येन त्वदङ्घ्रिह्रनवनीरजसञ्जनेन  
 जीवातुना ननु जिजीविषतीव मादृक् ॥१३८॥

रूपं दृशोस्तव गुणश्रवणं श्रुती मे  
 जिह्वाधरं तनुमनुस्फुटमङ्गसङ्गः ।  
 घ्राणं मुखश्चसनतोत्कलिका मनो मे  
 प्रह्लादयत्यपि च संलयसङ्गतायाः ॥१३९॥

आदित्य एष तव दोःपरिवेषमिच्छं—  
 स्तन्मण्डयाशु मदुषध्नमनन्यनिध्ने ।  
 वामाक्षि ! वामविधिरेव मम प्रसून—  
 बाणव्रणैरितरथा हि शरव्यितस्य ॥१४०॥

इत्येकपिङ्गगदितानि सुवाचिकौष—  
 मुक्ताफलानि कुरु कण्ठविभूषणानि ।  
 स्वप्रेमसूत्रततिसेवन्तः सुकेशि !  
 दूत्यं विधेहि फलिनं वरणेन तस्य ॥१४१॥

एषा नृपाद्दधनदवाचिकधारयात्तां  
 वाचं निशम्य भृकुटीकुटिलाननासीत् ।  
 अप्यान्तरे हि विषमे बहिरिङ्गितस्य  
 वैषम्यमेव निगदन्ति यदिङ्गितज्ञाः ॥१४२॥

तद्वाचिकान्यवगणय्य धराधरं तं  
 नम्रानना मृदुलमञ्जुलचाटुसूक्तिम् ।  
 आचष्ट केयमिति वञ्चनरीतिरात्थ  
 पृष्टं यदन्यदपि कैतवकौशलेन ॥ ॥१४३॥

किञ्चित्प्रकाशविशदा नु सरस्वती ते  
 गूढेङ्गिता क्वचन चापि सरस्वतीव ।  
 पीयूषसोदररसा मम चाटुगर्भा  
 श्रव्या न कोऽपि सुधयाऽधिकया नु तृप्येत् ॥१४४॥



यच्छेखरे मणिरिवासि समुद्गतस्त्वं  
 वंशः स एव कतमो भवतः शृणोमि ।  
 यद्यप्युदारचरितानि गृणन्ति पुंसां  
 वंशं तदप्यभिहितास्तव निश्चिनोमि ॥१४५॥

एवं निगद्य विरतां निजगाद बालां  
 नैवानुयोजनमहं प्रतिवक्तुमीशः ।  
 नामग्रहः स्वयमहो महतां विगानं  
 तत्स्वान्वयप्रकटनं कतमाऽस्तु नीतिः ॥१४६॥

चेदुज्ज्वलं न च कुलं रुशती ममोक्तिः  
 कल्या कथं परवतो यदि निर्मलं तत् ।  
 मन्नामशीलकुलसंकथयाऽलमाशु  
 श्रीदं पतिं ननु वृणुष्व पतिवरे ! त्वम् ॥१४७॥

किञ्चानुरोधवशतः प्रतिवच्मि किञ्चिद्  
 वंशाङ्कुरो यदुपतेः कतमोऽस्ति मादृक् ।  
 त्वदभर्तुरेव धनदस्य विभोर्भुजिष्यः  
 स्वीयप्रथां प्रथयतो मम गर्हणैव ॥१४८॥

वाणीमिमां रतिपतेरिव पञ्चवाणीं  
 सन्देशयामृतरसायनमाशु साध्वि ! ।  
 या मन्मुखेन भविता मदनापमृत्यो—  
 स्नाणाय तस्य विरहज्वरपाण्डुमूर्तेः ॥१४९॥

त्वद्विप्रलम्भविधुरक्षण एव कामः  
 श्रीदं शरव्ययति सूनशरैरमोघैः ।  
 क्षन्ता कथं निरवधानतया विलम्ब—  
 मीषत्करोऽभ्युपगमोक्तिलवो भवत्या ॥१५०॥

शौरेः सुधामधुरमुद्गृणतोऽतिहृद्यं  
 वाचां चयं प्रतिपदं नु मुदं दधाना ।  
 बालाऽवधाय विकचाननपङ्कजं सा  
 संलापसम्मुखमथो सुमुखी चकार ॥१५१॥

सङ्क्रान्तविश्वजनविश्वजनीनभावा  
 प्रेक्षावतां विमलदर्पणिकेव दृष्टिः ।  
 सा त्वादृशस्य सुतरां मदुपेक्षणीये  
 काऽभ्यर्थना सुरजनेऽपि मुहुः प्रयस्य ॥१५२॥

त्वं वा वितर्कय सुपर्वगणोऽतिखर्वा  
 किं मानुषीं सुमलिनामुररीकरोति ।  
 हंसोऽवमत्य वरटामपि किं बलाकां  
 प्रायो निसर्गधवलां परिरिप्सतीति ॥१५३॥

का किन्नरीषु नरदैवतभोगलीला  
 द्वैराज्यसिन्धुतटगाहतरीषु नारी ।  
 ताभिर्विना मयि रतिः क्वचिदस्तु तेषां  
 निर्मौक्तिकस्य ननु काचमणावपेक्षा ॥१५४॥

तद्गौरवादपि शृणोमि गिरस्त्वदीया  
 दाभ्यत्यमेव घटते न ममामरेण ।  
 किं वा विभावय चिरं पृषती वराकी  
 दन्तावलं मदकलं तुलयाऽभ्युपैति ॥१५५॥

अत्रान्तरे तरललोचनयाऽऽलिरुक्ता  
 सूक्त्याऽलपत्समुपकर्णय तद्रहस्यम् ।  
 एषा नृदेव ! वसुदेवपतिं विनाऽन्यं  
 नाशंसते हि मधवन्तमपि प्रतीहि ॥१५६॥

तन्नाममन्त्रभवधानपरा कृशाङ्गी  
 जज्ञप्यते विदितविद्य इवात्मविद्याम् ।  
 तत्प्रेमकोमलमृणालभिदा भयार्ता  
 सुश्रूषते न पुरुषान्तरनामधेयम् ॥१५७॥

सा किन्नरेशधिषणाप्रतिभूर्ममस्तात्  
 शौरिं व्यतीत्य शयनेऽपि परो व्यचिन्ति ।  
 किं जाग्रतोऽप्यनिमिषाः सुषुवुः परस्य  
 दारान्विवोदुमनसो ननु संविदानाः ॥१५८॥

श्रीदस्तु दीनजनकारुणिकः स्वतोऽनु—  
 गृह्णातु मां हृदयवल्लभलम्भनेन ।  
 बहिर्मुखा भुवि नृणामुत कामितार्थ—  
 सम्पादका न कमितार इति श्रुतोक्तिः ॥१५९॥

अज्ञानि मे स्पृशति शौरिरुषर्बुधो वा  
 साक्षान्ममाश्रुतमिदं मनसि द्रढीयः ।  
 किं वा सुमानि कनकस्य हरोपहार—  
 मर्हन्ति मूपतनमेव परा न काष्ठा ॥१६०॥

प्रायो नृजन्म कतमं नु मलीमसं वा  
 स्त्रैण तदप्युपपतिव्यतिषङ्गदुष्टम् ।  
 जार्ल्मोऽघमर्षणमृजां कथमर्हतीदृग्  
 गाङ्गाम्बु मार्ष्टि किमशौचमिरानिपस्थम् ॥१६१॥

सख्या स एवमुदितः स्वरसज्ञयाऽपि  
 शौरिर्मुखं नयनयोरतिथीचकार ।  
 भूयो रुषाऽपि परुषाणि चट्टनि किञ्चित्  
 संव्याजहार वचनानि मिताक्षराणि ॥१६२॥

तच्चित्रमत्र पृथुभामिनि ! भासते मे  
 यत्किन्नरेशमवधीर्य सुवर्णरम्यम् ।  
 तावन्नरेशमपि वर्णविहीयमान—  
 मङ्गीकरोषि कतमा तव चातुरीयम् ॥१६३॥

तत्स्वर्गिणा सुरतसागरपूरपार—  
 लीलाविलोललहरीः परिचेतुकामा ।  
 त्वं तेन यौवनमिदं फलिनं विधेहि  
 किं ते नरेण तनुसातकणेन तुष्टिः ॥१६४॥

तन्मानसं त्वयि नितान्तनिखातमास्ते  
 चामीकरैऽरुणमणीव मनोहराङ्गि ! ।  
 त्वन्मानसं किमु ततो विमुखं न को वा  
 चिन्तामणिं स्वशरणागतमाद्रियेत ॥१६५॥

माहात्म्यतो दिविषदां मनुजोऽपि दिव्य—  
 शक्तीः प्रपद्य दिविषत्त्वमियति सद्यः ।  
 गोशीर्षसन्निधिवशादपि पारिभद्रो  
 यच्चन्दनायत इतीह किमद्भुतं ते ॥१६६॥

अभ्यर्थयेत तव वा सुरशाखिनं स  
 स्वप्राङ्गणस्थमपि संवननाय जातु ।  
 तत्किं स्वयं न दयिता भविताऽसि तस्य  
 यस्मादवन्ध्यफलदाः सुरपादपाः स्युः ॥१६७॥

तत्सार्वभौमकरिकुम्भजविभ्रमैस्ते  
 न स्पर्द्धतां किमु कटोरकुचद्वयीयम् ।  
 श्रीदस्त्वदीयकुचयोः करसञ्जनाद्वा  
 दिक्कुम्भिकुम्भतलपातसुखं विधत्ताम् ॥१६८॥

धत्तामनङ्गततरङ्गततरङ्गितानि

त्वत्प्रेमसङ्गततरतैः स कुरङ्गनेत्रे ! ।

तेनैधि नार्यैपि सुरीसुरसङ्गमेन

हेमैव लोहमिव सिद्धरसेन विद्धम् ॥१६९॥

कर्ता स्वयम्बरमखे महदन्तरायं

यक्षोऽनवाप्य भवतीममरानुभावात् ।

तद्राजकं समरमस्यसि किं च वाहा—

वाहव्यथो ननु मिथोऽपि निरगलं वा ॥१७०॥

येनावकोकिलरसालशिखेव भान्ती

सम्भाविनी व्यगणयः किमु तं कुबेरम् ।

मद्वाचमञ्च न च मुञ्च पतिं नु हस्ते—

कृत्य प्रसाधि तरलाक्षि ! मनोविनोदम् ॥१७१॥

इत्थं गिरः समुपकर्ण्य सुधाब्धिकुर्या

दूतोदिता हृदि तथेति विनिश्चिकाय ।

दोलायितं नु मनसा चकितेक्षणायाः

स्तम्भायितं कनकगौरतनोश्च तन्वा ॥१७२॥

तत्प्रावृषेप्यमिव दुर्दिनमश्रुधारा—

सम्पातनिर्झरमिवाक्षियुगं चकासे ।

बिन्दू मणीव हृदि कज्जलपुञ्जनीलौ

किं नायकावधि निपत्य विराजतोऽस्याः ॥१७३॥

सा प्रेमकाव्यरचनां हृदि बिन्दुमत्या

नेत्राश्रुबिन्दुमितया किमलञ्चकार ।

वक्षोजकुह,मलमलङ्कुरुतः किमस्ते

तन्नेत्रपद्मयुगलादलिदम्पतीव

॥१७४॥

सा वैशसेन सुदती रुदती विहस्ता  
 सख्यौ स्म रोदयति किं किल रोदसीव ।  
 प्राणेशलाभकृतविघ्नविनिर्णयार्ते—  
 रुद्धान्तबुद्धिरनिशं विललाप बाला ॥१७५॥

हंहो विधे ! यदलिखः किल भालपट्टे  
 प्रेयान्यदुस्तव भविष्णुरलं विलम्बैः ।  
 तर्किक विलुम्पसि लिपिं करुणालयं हि  
 धिक् ते मनो विकरुणं विरुणद्धि यन्माम् ॥१७६॥

न त्वं मनः ! कुलिशमाशुभिदामुपैषि  
 कामाशुगैर्भवसि लोहमथो न वहनेः ।  
 यद्विप्रलम्भजनितान्न विलीयसे तत्  
 किं क्षोदकृत्तिलकटं करवाणि यस्त्वाम् ॥१७७॥

प्राणा ! वियोगदहनज्वलदूषरेऽस्मिन्  
 मन्मानसे धृतिरहो ! प्रतिभाति किं वा ।  
 मत्प्राणनाथदिशमप्यनिला भवन्तः  
 संश्लिष्य तन्मम जनुः फलिनं विदध्वम् ॥१७८॥

हे लोचने ! प्रियविलोकनखञ्जिताशे !  
 धत्तः किमालविरलायितचापलानि ।  
 स्वं कल्मषं किमिति नाश्रुजलाभिषेकान्  
 मृष्टो निजासुदयितव्यवधानदुःस्थम् ॥१७९॥

साधारिका व्यतियती यदि कल्पकोटि—  
 स्तज्जीवनं कियदभिक्षणकल्पनेन ।  
 क्वास्मादृशामथ मृतिर्दयितं मनश्च  
 प्राणानिलस्तदपि नोज्झितुमीहतेऽन्तः ॥१८०॥

वर्षर्तुमस्रजनिर्तं नु विभाव्य लेखा  
 निद्रालवो विकरुणाः किमु नो दयन्ते ।  
 यद्वा मयि स्मरमदान्धधियां हि तेषां  
 बुद्धिर्बभूव परकृत्यविधानबन्ध्या ॥१८१॥

शौरैऽवधूय सकलं तव पादपद्म—  
 कोशेऽलिनीव कृपणा किल तस्थुषीयम् ।  
 तद्यातनां हृदिगतो नु दिदृक्षसे किं  
 मन्ये कठोरहृदयाः किल सांयुगीनाः ॥१८२॥

श्रोता पुनस्तव कृते यदवाप संस्थां  
 तन्वी यदा सुभग तावदनुग्रहीता ।  
 नो साम्प्रतं किल कृपाकणतस्तदानीं  
 विज्ञास्यसि स्वयमिमां ध्रुवमेकपत्नीम् ॥१८३॥

एतानि पद्मवदनापरिदेवितानि  
 शृण्वन्त्यदुर्भ्रमविपाकमपहनुवानः ।  
 तावद्बलाद्ब्रह्मचकलद्विरहस्मरस्तं  
 संस्मर्य चारुनयनाकिलिकिञ्चितानि ॥१८४॥

कौबेरदूत्यमपचिन्त्य हृदि स्मराज्ञां  
 सञ्चित्य सम्भ्रमवशेन परिस्फुरन्तीम् ।  
 चन्द्राननां स विरहय्यं मृषा विकल्पै—  
 रित्यालपद्यदुकुलाचलपूर्णचन्द्रः ॥१८५॥

दूनाऽसि दीनवदना किमु न ब्रवीषि  
 कोप जहीहि किमु रोदिषि कोपनेऽस्मिन् ।  
 मन्मौलिरत्नघृणिमञ्जरिरोहिणी ते  
 शुश्रूषतां चरणचारुनखेन्दुमूर्तिम् ॥१८६॥

असैनुं शुक्तिजकणैरिव हारगुम्फं  
 हृद्यातनोषि किमु हारमपाकरोषि ।  
 मय्यानतेन तनु मानिनि ! मानमुच्चै—  
 स्तृण्यासु ते किमु कठोरकुठारघातः ॥१८७॥

लीलारविन्दमवधूय मुखारविन्दं  
 पाणौ दवःपितकान्तिमिवानुभुज्य ।  
 धत्से कुतो नयनखञ्जनमञ्जनेन  
 नानक्षि ! किं धवलमूर्जलाभिषेकैः ॥१८८॥

यत्कज्जलेन मुखमश्रुजलेन सार्द्धं  
 तन्माज्जयामि निजपाणितलेन किं वा ।  
 स्वं विप्रियं पदसरोजरजोऽणुभिस्ते  
 सार्द्धं स्वमौलिमिलनेन निवेदयाहम् ॥१८९॥

तद्विन्दुविच्युतकमश्रुजविन्दुपाता-  
 न्मां दान्तमेव किमु दातमलङ्करोषि ।  
 यन्मानिनि ! प्रणयबन्धुरकन्धरेऽस्मि-  
 न्मानं तनोषि यदि वा मयि स प्रसादः ॥१९०॥

संवाहयामि चरणौ किमु बाहुवल्लीं  
 भल्लीमिव स्मरभटस्य दृशं विहस्य ।  
 सन्धेहि मय्यवनते नु विधेहि लीलाऽ-  
 पाङ्गक्षणेन घनसारनिमग्नमाक्षि ! ॥१९१॥

जातु व्यलीकमपि ते विदधे तदर्थं  
 चण्डि ! त्वदीयकुचशम्भुशिरःप्रमाणम् ।  
 तत्संवृणुष्व रुदनाम्बुदकालमक्षणो—  
 विद्योततां तव सितस्मितकौमुदी मे ॥१९२॥



विकस्वरं तामरसं स्मितेन ते  
 कटाक्षपातेन शिलीमुखावली ।  
 गिरां प्रचारैर्भुविन्दुवृन्दता  
 न्नास्तु मन्मानसमानसे प्रिये ! ॥१९३॥

स्तनोदयाद्रिं नखचन्द्रलेखया  
 परिष्कृतं कर्तुमना जनस्तव ।  
 तनु स्ववक्षःपरिरम्भलम्भनात्  
 तनूरुहाश्मप्रतिबिम्बनतेनम् ॥१९४॥

गिरः सुमाध्वीकसुधारसौरसी—  
 र्ममाश्रवस्य श्रवसोः सपीतये ।  
 सृजाऽसि यत्त्वं वसुदेवसंज्ञिनो  
 निशाकरस्येव निशा नु जीवनम् ॥१९५॥

इति स बुबुधे मिथ्यालप्य भ्रमस्य विघट्टनात्  
 परिचितचिदानन्दः साक्षाद्यमीव बभौ विभुः ।  
 यदुरिदमथाह स्म प्रायो विधिर्दुरतिक्रमः  
 सहृदयहृदामौचित्येऽपि स्वलन्ति धियः खलु ॥१९६॥

भ्रमपरवता भावाकृतं यदान्तरगोचरं  
 किमिति मयका प्रादुश्चक्रे स्वनामपुरस्सरम् ।  
 अयि ! विगलिते दूत्यौचित्ये किमुत्तरपरे यो  
 सुखमभिमुखं किं कर्ताऽस्मि त्रपागुरु तत्पुरः ॥१९७॥

अहह ! जनतानिर्वादोऽयं सतामपि दुर्जयो  
 जनकतनयां यस्माद्रामो गृहान्निरकासयत् ।  
 अथ मम मनः श्रद्धाशुद्धं सुरेण परीक्ष्यतां  
 कथमपि मृषा लोको लोको विनिन्दति निन्दतु ॥१९८॥

इति विरहजप्रेमालापात्प्रतीत्य निजं पतिं  
 चकितहृदया लज्जासिन्धौ ममञ्ज मनस्विनी ।  
 तदिति हृदयाकृतं साक्षात्सखीवदनेन या  
 निगदितवती भर्तुः प्रेमप्रमोदसमृद्धये ॥१९९॥

इयमियमये ! धन्यस्वाश्रुप्रवाहपरम्परां  
 तव पदयुगातिथ्यं कृत्वा जगौ वरवणिनी ।  
 तव विरहजे वह्नौ प्राणा मया जवसीकृताः  
 किमिति कमिता यक्षो मत्तः परं यदतः परम् ॥२००॥

अपि सुरजनो मान्यः साक्षान्मम त्वयि जीवितं  
 ननु रुचिभिदा नानारूपा विभाति यदङ्गिनाम् ।  
 प्रकटितजगद्भ्रस्तुस्तोमं विहाय विभाकरं  
 किल शशधरे प्रेम्णा धत्तां मुदं नु कुमुद्वती ॥२०१॥

अथ धनपतेर्मन्तुं मन्ता भवानपि तत्कृते  
 परिणयमखे संतर्प्येनं स्वयम्बरडम्बरे ।  
 अहमिति वरीताऽस्मि प्रायो भवन्तमनन्यधीः  
 कठिनहृदयस्त्वं कामो वा तथाऽस्तु न चामरः ॥२०२॥

शौरिश्चन्द्रमुखीमुखोद्गतसुधाधाराऽनुकारागिरः  
 श्रुत्वा दूत्यरहस्यमीश्वरसखे सम्यक्समाख्यातवान् ।  
 सद्भूतार्थनिवेदनात्समतुषत्तस्मिन्स दृष्टावधि—  
 श्वेतःशुद्धतया यथार्थकथनं सम्यग्दृशां प्रातये ॥२०३॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेय-  
 पण्डितेश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाग्नि महाकाव्ये वसुदेव-  
 कनकाऽनुलापो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

## ॥ चतुर्थः सर्गः ॥

अथाययौ राजकुमारमण्डली  
स्वघोरणैरद्भुतवेषशेखरा ।  
परस्परस्पद्धिपुरागमोत्सुका  
स्वयम्बरां सङ्कलितस्वयम्बरम् ॥१॥

अहंयवः सङ्गरधीरविक्रमाः  
स्ववर्यसौन्दर्यनिरस्तनिर्जराः ।  
बभुः कुमाराः श्रुतसिन्धुमन्दराः  
पथि प्रयान्तः स्मरमूर्तिसुन्दराः ॥२॥

रसातलं नाध्वविहीनमध्वगै—  
युवप्रवेकैर्विरलो न सत्पथः ।  
न वा युवा कामशरैरपीडितो  
बभूव भूः सङ्कुलतार्तिभारभूः ॥३॥

महीभृतां सैनिकवाजिवारणैः  
पदाजिरथ्याऽश्वतरक्रमेलकैः ।  
विरेजिरे राजपथाः सुसङ्कुला  
न सर्षपेणान्तरमाप्यत क्षितौ ॥४॥

अखण्डभूमण्डलमण्डनेश्वरा—  
स्तथान्तरीपप्रभविष्णवो नृपाः ।  
परे सुरेशा नरवाहनादयो  
गुणेन तस्या नु सिता इवैयरुः ॥५॥

निराकृतोऽपि स्फुटदूतजल्पितै—  
मिथो विजातीयतयाप्यसङ्गतः ।  
धनाधिपो राजसमाजमाययौ  
न मानमान्द्यं गणयन्त्यभीप्सवः ॥६॥

निजोर्मिकामार्पयदेशशौरये

स वेद तां दिव्यविभूतिभूषिताम् ।

प्रतारकाणामतिगौरवः स्फुटं

विशङ्कनीयः सखिषु प्रसेदुषाम् ॥७॥

ततश्च तस्याः परिधानतो यदुः

स राजराजो विरराज चापरः ।

तदा द्विमूर्तिर्धनदः प्रथामगा—

यथातथं सञ्जिरते ध्रुवं जनः ॥८॥

विदूरदेशेभ्य इवैत्य नैगमाः

क्षणात्समीयुः कनकार्थलिप्सवः ।

विदिद्युते तत्पुटभेदनं च तैः

सुरप्रकाण्डैः किल किं सुरालयः ॥९॥

विचित्रसौघस्थितिसाभिवादन—

प्रणामविश्राणनगौरवोक्तिभिः ।

स तान्हरिश्चन्द्रनृपः क्षितीश्वरा—

नुपाचरत्काममुपासनापटुः ॥१०॥

सगौरवं स्वाश्रयविष्टरार्पणं

तथातिथिभ्यः प्रियवाग्विसर्जनम् ।

अथातिथेयी गृहमेधसामिति

स्थितिर्न चापैति कदा सदातनी ॥११॥

प्रबोधसंस्कारवतीः सरस्वती—

निरूपयन्तोऽप्यनिमेषदृष्टयः ।

पूरद्विनिध्यानविधौ सुरा नरा

न भेदमापुः किल तत्र सङ्गताः ॥१२॥

गतश्रमस्वेदजलाः प्रकीर्णक—

प्रवीजनैश्चित्रवितानसंश्रयैः ।

प्रफुल्लमाल्या नवदूष्यभूषिता

न नाकिनोऽस्मिन्विभिदुर्नुनायकाः ॥१३॥

दिनं व्यतीयुः क्षितिपालनन्दिनी—

चरित्रचित्राणि गृहाणि वीक्ष्य ते ।

निशामपि स्वप्नरतोपगूहन—

प्रसङ्गरङ्गव्यतिषङ्गविभ्रमैः ॥१४॥

अथास्य दूतानुमयाभिमन्त्रणैः

समाहृता राजसमाजमण्डपम् ।

स्वयम्बराभिख्यमलं विभूषणै—

विभूषयन्ति स्म विभूषिता नृपाः ॥१५॥

महामसारोपलबद्धचत्वरं

बलक्षवालभ्यजनालिसङ्कुलम् ।

बभौ सुवर्णाभरणांशुपिञ्जरं

सरः सराजीवमिव स्वयम्बरम् ॥१६॥

सुधाभुजो मानुषरूपमीक्षणै—

निपीय सौन्दर्यसुधातरङ्गितम् ।

समत्सरभ्रुकुटिदन्तरान्तरां

क्षणादवज्ञातरलां दृशं व्यधुः ॥१७॥

महीमहेन्द्राः परिपीय साधिम—

स्पृशां सुराणां परभागर्ता दृशा ।

तदैव तेषामनिमेषतां दृशो—

नैनिन्दुरुन्मेषितदोषमत्सराः ॥१८॥

अहो ! असूयाऽभ्युदयो गुणिद्रुहां  
यतोऽनवद्येऽपि गुणेऽवमानना ।

परस्य दोषान्तरमर्मसूचना—

दसूनृता सूचकतैव सा नृणाम् ॥१९॥

गिरीशभालज्वलने जुहाव यां  
तनूमनेकाकृतिलब्धिसिद्धये ।

स्मरो युवानस्त इमे पृथग्विधा

बभुः कलाकेलिकलापमूर्तयः ॥२०॥

स्मरस्वरूपान् दधतोऽतिसुन्दरान्

तनूमनूनांस्तरुणाननेकशः ।

हराक्षिवह्नौ विविशे वशात्मना

स्मरेण तप्तेन समीक्ष्य मन्महे ॥२१॥

नृत्नरूपैर्षुधा सुधाकरै—

ज्वलन्मणीनां मुकुटाम्बुम्बिनाम् ।

सुसङ्गतं तत्सदृशैर्हि तादृशां

विभाति रत्नैः सह रत्नतातुला ॥२२॥

महीभुजां करुपलतेव दोर्द्धयी

रराज शोणाङ्गुलिपल्लवायिता ।

सुपुष्पिता काञ्चनरत्नभूषणै—

र्यथेष्टदानात्फलितेव याऽर्थिनाम् ॥२३॥

ततः कनत्काञ्चनपीठपद्धतौ

स तानुपावीविशदचितान्नृपः ।

सुमेरुकूटेष्विव ते सुधान्धसो

व्यदीदिपन्नुज्ज्वलहारहारिणः ॥२४॥

अपारयन्तस्त्रिजगद्युवश्रियं  
 निरीक्षितुं पौरजना हि तस्कृते ।  
 स्वसर्गनिर्माणरहस्यमत्र तान्  
 न्यदर्शयन्तु इवाखिलान्विधिः ॥२५॥

स तत्र शक्रोऽत्र महीबिडौजसः  
 सहस्रशः कामितकरुपभूरुहः ।  
 ततोऽत्र वृन्दारकवृन्दता घना  
 दिवं जिगायेव किल स्वयम्बरः ॥२६॥

दिवोधवः पङ्क्तिशतानि चक्षुषां  
 सदःसदां कान्तिसुधासपीतये ।  
 व्यधाद्विधाता शतयज्ञकर्मणा—  
 मपप्रथस्तेन सहस्रलोचनः ॥२७॥

गिराम्पतिर्नाकिनिकायनायकः  
 प्रगल्भसूरिः सकलार्थनिह्नवः ।  
 स वर्णयामास सभां प्रभाषणा—  
 दवाप वाचस्पतिनामधेयताम् ॥२८॥

दिविस्थितं देवतयौवतं वर—  
 प्रवर्यसौन्दर्यसुधासरस्वति ।  
 स्वलोचनाम्भोजकदम्बतां नु तां  
 न्यमज्जयद्या न निमेषमावहत् ॥२९॥

बभुः सदस्या नृपमौलिशेखरा  
 मनोभवेषु व्रणदुःखदुर्विधाः ।  
 किमु स्मरन्तः कनकेष्टदेवता—  
 मिवैकताना निभृताङ्गयण्टयः ॥३०॥

अथ क्षितीन्द्रो नृपचित्तवारिधि—

स्मरोर्मितोद्वेलनचारुचन्द्रिकाम् ।

निजाङ्गजां वारणराजगामिनी—

मजूहवद्राजसभां सभासुरः ॥३१॥

निपीय मध्येसभमङ्गजप्रभा—

विभातभूषामणिदीप्तिदन्तुराम् ।

समाजिहानामरविन्दलोचना—

मभाणि भूपैरिति कामविकलवैः ॥३२॥

इयं नु शृङ्गाररसैकवारिधे—

विलोककल्लोलपरम्परा परा ।

स्फुरद्दुकूलांशुकतारहारताऽ—

नुकारिडिण्डीरचया विराजते ॥३३॥

इयं नु रम्भैव परा जनश्रुतिः

श्रुता सुरैः कामितकामविभ्रमा ।

अथो किमस्मन्नयनार्थितर्पणे

प्रकरिपता करुणलतेव जङ्गमा ॥३४॥

यदीयसौन्दर्यसुधासुधाशना

वयं नु सौवर्गसुखं लभामहे ।

ध्रुवं महानन्दपदं वरिष्यतेऽ—

दसीयसंवेशनसंविदा मुदा ॥३५॥

रवीन्दुबिम्बे इव कुण्डलद्वयी—

मिषेण भग्ने मुखमण्डलश्रिया ।

उपास्तिमाघत्त इति व्यलीकता—

निबर्हणाय स्फुटमेतदीयया ॥३६॥



इदं हि साक्षादमृतद्युतिमुखं  
 दिवो मृगाङ्कः स्फुटमौपचारिकः ।  
 सखञ्जरीटं नयनाम्बुजद्वयं  
 व्यधादिवास्याः कुतुकेन किं विधिः ॥३७॥

मनोभवो मुख्यमिदं धनुर्भ्रुवौ  
 किमङ्ग नाङ्गीकुरुतां जिगीषया ।  
 तथैतदीये गुणवृत्तिपुष्पजं  
 जहातु पूर्वो हि परेण बाध्यते ॥३८॥

रते रतीशस्य च सौधयुग्मकं  
 नवं वयः कारुरलञ्चकार यत् ।  
 तदग्रमुत्तम्भितकुम्भशेखरं  
 विभाति भर्मद्युति तत्कुचद्वयम् ॥३९॥

मृणालनालादपि तद्भुजद्वयी  
 करं नु जग्राह विजित्य तत्सुमम् ।  
 ततः करोऽस्या गृहमद्भुतश्रियः  
 प्रतीयते स्म त्रिजगज्जनोक्तिषु ॥४०॥

विधिर्न चैनां निजकर्मकर्मठः  
 ससर्ज यः शान्तरसैकमन्दधीः ।  
 इमां नु शृङ्गारसुधातरङ्गिणीं  
 स्मरः स्वशिल्पैः सुतनूमजीजनत् ॥४१॥

तदास्यनिःश्वासमिषेण मालयाऽ—  
 निलः स्वरेण स्फुटकोकिलस्वनः ।  
 प्रसूनताऽङ्गप्रदिमाऽनुभाव्यते  
 मधुः स्वलक्ष्मीं किममूमजीघटत् ॥४२॥

जिता स्वरूपेण च मेनकाऽऽनका  
 स्वरेण वीणाऽऽस्यरुचा शशिद्युतिः ।  
 स्मितेन पद्मिन्यथवा मृगीदृशा  
 दृशा मृगी नास्त्यजितं जगत्त्रयम् ॥४३॥

इति श्रुता पारिषदैर्नराधिपै—  
 रनङ्गविद्रावणविद्रुतोक्तिभिः ।  
 निमेषशून्यैरपि किन्नरैर्नरै—  
 विलोचनैश्चारुविलोचना पपे ॥४४॥

स कोऽपि नाभूदिह भूपुरन्दरो  
 मुदा समुल्लेषुरुदारवैभवः ।  
 न यस्य देहावयवास्तदीक्षणो—  
 द्भविष्णुरोमाङ्कुरदन्तुरान्तराः ॥४५॥

दिवः पतद्भिः सुरपुष्पवर्षणै—  
 स्तिरोहितं तद्भ्रमरैस्तदाननम् ।  
 भियाऽथ भुग्नं न ददर्श राजकं  
 प्रियेषु विघ्ना बहवो विधेर्वशात् ॥४६॥

प्रसादरम्याननपङ्कजा युव--  
 स्वरूपनिध्यानविनिद्रलोचना ।  
 वरैकलाभप्रणया महीभुजा--  
 मवातरत्संसदि देवतेव सा ॥४७॥

तदङ्गताऽऽदर्शतलेषु मूषण--  
 प्रभासु सङ्क्रान्तनिजाङ्गकैतवात् ।  
 न केवलं चारुतनौ दृशा हृदा  
 ममञ्जुरङ्गैरखिलैर्महीभृतः ॥४८॥

सभ्याधिवासकृतसौरभधूपधूम—

भूमभ्रमैर्मुदिरवृन्दमिवाकलय्य ।

मायूरमारचितताण्डवडम्बरेण

केकारवं किल करोति विमुक्तकण्ठम् ॥४९॥

काश्मीरजन्मघनचन्दनचन्द्रपङ्क—

मङ्गल्यमाल्यपरिकर्मजगन्धलुब्धैः ।

भृङ्गैरुपर्युपरि राजकमापतद्भिः—

धत्ते स्म तत्समदवारणराजलक्ष्मीम् ॥५०॥

उच्चैस्ततान ततमत्र घनं घनं वा

नद्धं ननाद सुषिरं श्रुतिरन्ध्रपेयम् ।

सन्मागधाः स्फुटमुदस्तकरा निपेटु—

नानानृपालकुलपौरुषकीर्तनानि ॥५१॥

पुंलक्षणा सकलभूपतिभूरिवंश—

वीर्यानुभावकथनप्रवणा विदग्धा ।

संख्याजहार किल दक्षिणपक्षसंस्था

कन्या कनत्कनकवेत्रवतीति नारी ॥५२॥

एषा सभा मखभुजां विजिगीषयेव

सेना स्मरस्य जगतां ननु नैकरूपा ।

रम्भोरु ! तद्युववरं वृणु कञ्चनैक—

मात्मीयचित्तपरिचिन्तितमप्यमुष्याम् ॥५३॥

दृष्टेर्निसर्गजमुदीक्षणतो निमेष—

राहित्यमेषु न च तन्वितया मुखेन्दोः ।

द्वेधा सपीतिरधरामृततर्पणाद्वा

देवेष्ववन्ध्यमपि जन्म तथाविधंस्तान् ॥५४॥

क्रीडागिरिः सुरगिरिः किल पारिजाता  
 येषामभीष्टफलदा वनपादपास्ते ।  
 चिन्तामणिः सुरगवी बहु सन्निधत्ते  
 तेषां विलासललितैरमरी भव त्वम् ॥५५॥

बाला स्वमूर्ध्नि करकुड्मलसञ्जनेन  
 गीर्वाणवृन्दमुपनम्रशिरोधराऽऽसीत् ।  
 भीत्या चलं निजहृगं चलमादधानां  
 तामन्वमस्त चलितुं करुणारुणं तत् ॥५६॥

ते वीक्ष्य चन्द्रवदनामुखचन्द्रपाना—  
 न्तर्द्धानतः सुरगणाननकैरवालीम् ।  
 म्लिष्टामनैषुरपरं विषयान्तमेनां  
 मेघावलीं नु पवना इव यानवाहाः ॥५७॥

सा तामवीभणदथ प्रतिहाररक्षा  
 राकानिशाकरसगर्भमुखारविन्दे ।  
 सौन्दर्यतर्जितरतीशसुरेन्द्रचन्द्रा—  
 निन्द्रानथ क्षितितलस्य निशामय त्वम् ॥५८॥

एष द्विषत्कुमुदकाननदैन्यमुद्रा—  
 सम्पादनप्रवणविक्रमविश्वचक्षुः ।  
 श्रीमानवन्तिपतिरुज्ज्वलकीर्तिपूर—  
 कर्पूरपूरितदिगाननपंक्तिरास्ते ॥५९॥

सिप्रासखी सलिलकेलिकलासु तत्र  
 संश्लिष्यतु प्रबलतुङ्गतरङ्गहस्तैः ।  
 त्वां कामसागरतरीमिव गाहमानां  
 फुल्लारविन्दनयनेन निभालयन्ती ॥६०॥

तत्र स्वपत्युरतिहादतया हताद्ध--

देहा विदग्धरमणी रमणीयमूर्तिः ।

गौरी त्ववन्तिविषये तरुणि ! त्वयेष्टा

भूयादबन्ध्यवरदा वरदानदक्षा ॥६१॥

गौरीपतेः शिरसि चन्द्रकला विधत्ते

विक्रुष्टशब्दनिगदाध्ययनान्तरायम् ।

यत्राङ्गनासु नृपतेः कृतविप्रियस्य

तद्बाहुपाशविनियन्त्रणमेव शिष्टिः ॥६२॥

दग्धं हि पल्लवयतु स्मरमेष तत्ते

पाणिग्रहात्पुलककण्टकिताङ्गयष्टिः ।

चण्डीशचन्द्रकिरणामृतपूरसेकै-

र्लब्धाङ्कुरं किल सदातनमेव तत्र ॥६३॥

तं भूपुरन्दरसुता स्मररूपभूषं

नाङ्गीचकार कुटिलेक्षणवीक्षणात्ताम् ।

जन्यः परत्र च निनाय जनीमिवास्मा-

च्चान्द्रीं कलां बहुलपक्षतिरर्कबिम्बात् ॥६४॥

दौवारिकी पुनरभाषत भामिनि ! त्व--

माखण्डले सकलगौडवसुन्धरायाः ।

डिण्डीरपाण्डुरयशःप्रसरत्प्रतापे

लीलाकटाक्षविकटायितमारभस्व ॥६५॥

एतत्समीकभुवि वाजिखुरोत्थधूली--

धारान्धकारितनभोऽपि धरायतेऽथ ।

एतच्छरक्षतरिपुक्षितिपालवृन्दैः

स्वर्गाङ्गनापरिवृतैस्त्रिदिवायते भूः ॥६६॥

गौडावनीन्द्रबलवाहचयस्य वैर-

मासीत्सपत्नधरणीधवयौवतस्य ।

आद्यश्चिचीषति खुरोद्धतरेणुराशि--

मन्यन्निरस्यति निजाश्रुजलपवाहैः ॥६७॥

आदत्त यो धरणिमण्डलमाशुवैरि--

राजव्रजस्य सुरमण्डलमुत्ससर्ज ।

आच्छिद्य हारमथ तद्रमणीगणस्य

निःसूत्रमश्रुकणमौक्तिकतारहारम् ॥६८॥

एतत्करालकरवालनिकृत्तकुम्भि-

कुम्भश्छलोच्छलितशुक्तिजकैतवेन ।

स्वेदोदबिन्दव इवारिजयेन्दिराया

निर्यान्त्यमुष्य करचण्डकरप्रतापात् ॥६९॥

एतत्कीर्तिसितीकृते जगति यद्वीचिस्वनैः स्वर्धुनी-

मीशः शेषमशेषपन्नगगणः फूत्कारतारारवैः ।

सुत्रामा पटुबृंहितैर्निजगजं वेदाथ जिज्ञासया

ताराभिस्तदकारि लाञ्छनमयं श शशाङ्केऽङ्गनम् ॥७०॥

एतेन गौरि ! नवमेदुरमेघमाला-

संकाशमेचकरुचेव तडिल्लतायाः ।

शोभां विभर्तुं परिरम्भविजृम्भितं ते

लीलाचमत्कृतचलाचललोचनायाः ॥७१॥

सश्रीकमप्यजडभावमपास्तदोषं

सा भूपमैक्षत न कैरविणीव मित्रम् ।

रम्यः स वा न च युवा किमियं न विज्ञा

यद्वा गरीयसितरा नियतेः समीहा ॥७२॥

एतां ततोऽपि विमुखीं सुमुखीं निरीक्ष्य  
 जन्या नृपान्तरमथो गमयांबभूवुः ।  
 पात्रं स्वभूमिपरिवर्तनतोऽन्यभूमिं  
 शैलालिनः परिषदीव विचित्ररङ्गम् ॥७३॥

तां द्वाःस्थिता मुहुरथ स्मितमामवादी-  
 दुत्फुल्लनीलनलिनाभलसत्तमाक्षि ! ।  
 त्वं काशिमण्डलपुरन्दरमिन्दिराया  
 लीलालयं कलय कोमलदर्शनेन ॥७४॥

मुक्ता मुमुक्षव इति द्वितयेऽपि यस्यां  
 ब्रह्मैकताननिलयं पदमक्षरं तत् ।  
 अध्यास्य काशिरिति साऽस्य निरूपयन्ति  
 ब्रह्मोत्तमेव जगदेकरसानुविद्धम् ॥७५॥

आरूढयोगिचरणव्यतिषङ्गपूता  
 तस्मादियं विषयिणामपि मुक्तिहेतुः ।  
 ज्ञानात्मनां शुभवती भवतीत्रभोग—  
 स्वर्भोगमोक्षफलदां पुरमस्य पश्य ॥७६॥

चूडामणिः शिवपुरी वसुधाङ्गनाया  
 मन्दाकिनी विमलमौक्तिकहारयष्टिः ।  
 सन्नायकः शिव इति त्रितयं चकास्ति  
 देशे जगज्जनमहोदयहेतुरस्य ॥७७॥

त्रिस्रोतसो ललितवारिविहारकेलौ  
 हारभ्रमं वितनुतां जलचिन्दुवृन्दम् ।  
 पीठे लुठत्तव कठोरकुचद्वयस्य  
 रङ्गत्तरङ्गभरभङ्गजमम्बुजाक्षि ! ॥७८॥

दुर्वारवैरिनृपवारिधिमाथमन्थ—

शैलः पुरि स्वयमयं स्मर एव मूर्तः ।  
मूत्वा त्वमस्य रतिरेव विराद्धपूर्व—  
मीशानमाशु भज तं किल वां प्रसत्त्यै ॥७५॥

भ्रैवेयकप्रतिसरप्रतिमैरकुण्ठ—

श्रीकण्ठकण्ठकरवेण्टनभुग्नभोगैः ।  
भोगीन्द्रभङ्गिभजनैरिव भोगिलोकः  
स्वर्लोकमासददिवास्य विभाति पुर्याम् ॥८०॥

अस्योर्वीपतिभालमूषणमणेर्यद्दानशौण्डात्करान्—

निष्णाता करवालकरूपलतिका सङ्कल्य तरुपातिगम् ।  
या प्रत्यर्थिमहीक्षितां क्षितितलप्राग्भारभोगार्थिनां  
सौवर्ग्यं विततार सारसुखदं साम्राज्यमत्यद्भुतम् ॥८१॥

आरादाराधने तत्क्षितिपतिकरणत्राणकोटीरकोटी—

रत्नच्छाया निखातक्रमनखरमयूखद्युतिर्घौततेऽसौ ।  
अस्याजिश्चेन्नवाजिब्रजखुरखुरलीखेलनोद्भुतधूली—  
धारा स्वर्गापगायाः कनककमलिनीकन्दनिःस्यन्दहेतुः ॥८२॥

स त्वां कनककनककेतकगर्भगात्रि ।

किञ्चित्समीरणसमीरितसारसाक्षिम् ।  
आश्लिष्य बाहुविनियन्त्रणजातरोम—  
हर्षः प्रकर्षसुखसम्भदमादधातु ॥८३॥

प्रोक्त्वासयन्कुबलयं सुदृशोः प्रमोद—

मापादयन्स विबुधानपि सत्कलश्च ।  
राजा तथाऽपि तमथो सुदती निरासे  
चातुर्यचारिमसुधानिधिमब्जिनीव ॥८४॥



वैरङ्गिकीमथ विलोक्य विलोलनेत्रा—

मन्यं नृपं समनयन्ननु यानधुर्याः ।

द्वीपान्तरं ननु निशामुखमाप्य सद्यः

सौरीं द्युतिं विलुलितामिव सौस्वाहाः ॥८५॥

चान्द्रीकलेव शितिपक्षदिनं क्षणं ये

भूमाधवं व्यतियतीं सुदती जगाम ।

सोऽनादृतः स्वपरिभावतमिस्रसख्य—

वैमुख्यमाप निजदुर्यशसा चिरेण ॥८६॥

भूयः सरोरुहमुखीमवरोधरक्षा

साऽवीवदन्नृपनिरूपणबद्धकक्षा ।

साकेतभूपरिवृढे दृढमस्ति चित्तं

चेत्त्वं कुरङ्गचपलाक्षि ! विचिन्तयाशु ॥८७॥

वैवस्वतान्वयपयोनिधिवर्द्धनेन्दु—

रेष प्रतीतरघुवंशकुलप्रदीपः ।

यत्पूर्वजः सकलभूतलभूमिपाल—

भालैकभूषणमभूद्भुवि रामचन्द्रः ॥८८॥

सोऽयं जगज्जनविलोचनचारुचन्द्रः

प्रत्यर्थिपार्थिवतमिस्रसहस्रभानुः ।

यद्दोः प्रतापकुलिशाग्निरमित्रकान्ता—

नेत्राम्भसाऽपि न च शाम्यति दुस्सहार्चिः ॥८९॥

आकारौऽभ्यवहारसन्निभ इति प्राचान्द्रिवाचां प्रथा

तथ्यैतस्य नृपस्य शत्रुघरणीसंक्रन्दनैणीदृशाम् ।

नेत्राणां किल कज्जलं कवलयन्कालः करालस्तरां

विस्फूर्जत्करवाल एष समभूत्तस्मादकस्मादपि ॥९०॥

एतद्दोर्द्वयकीर्तिदेवसरिता धाराजलश्यामला—

कालिन्दीकरवालिका समगमद्वैणीत्रये तत्र च ।

दीनद्वेषिसरस्वतीमिलिनया राजन्यवीरव्रजैः

स्नात्वाऽकारि सुराङ्गनासुरतजक्रीडारसोद्वेलनम् ॥९१॥

एतद्दोर्दण्डचण्डद्युतिकरनिकरत्रासितारातिराज—

स्तस्थौ यावद्विशङ्कोद्रुमकुसुमलताकुञ्जपुञ्जे निलीय ।

वीक्ष्यैतन्नामधेयाङ्कितनिशितशरध्वस्तपञ्चाननस्यो—

द्भूशताङ्कः करङ्कं व्रजतु विवशधीः कां दिशं कान्दिशीकः ॥९२॥

तत्र स्तनातटपरिस्खलितोर्मिसान्द्र—

मन्द्रारवोऽस्तु तव सारवहावगाहः ।

एतत्पुरी तव महायशमद्भुवाह—

नृत्याङ्गहारमिव तेन निदर्शयन्ती ॥९३॥

अस्योन्नपतपत्प्रतापतपनो विश्वत्रयव्यापिनीः

किं मूर्तीरकरोदभृदभिनभस्ताराऽनुकाराकृतिः ।

यद्भूमण्डलमण्डनं मणिगणैः कर्पूरकुन्देन्दुभि—

र्दिण्डीरेण फणीश्वरेण गहनः पारेजगद्गाहते ॥९४॥

एष त्वदीयकुचमण्डलचन्द्रमौलि—

मर्द्धेन्दुभैर्नखपदैस्तमलङ्करोतु ।

यद्वा त्वया सह मिथः स्मरमल्लयुद्ध—

मभ्यस्यतु स्तनयुगप्रतिमल्लघातैः ॥९५॥

इत्येवं वरवर्णिनी समतुषन्नो वर्णनाकर्णना—

दभूर्भर्तुर्मनुवंशजस्य परतो भ्रूक्षेपमातन्वती ।

अद्वैतं हृदि सविदं चित्चिदानन्दं गिरां विस्तरा—

न्निस्तीर्णं नु विवेदाञ्चकार परमं ब्रह्मेव शौरिं मुदा ॥९६॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तम श्रीपद्ममैरुविनेय

पण्डितेशश्रीपद्मसुन्दर विरचिते श्रीयदुसुन्दरमहाकाव्ये

कनकवतीस्वयंवराडम्बरो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

## ॥ पंचमः सर्गः ॥

तामिन्दुसुन्दरमुखीं शिबिकाधरस्थाः

सद्यो नृपान्तरमथ स्म नयन्ति विज्ञाः ।

श्लेषोक्तिमाशुकवयः कवितानुभावाद—

भावान्तरं समुदितां विविधैरिवार्थैः ॥१॥

द्वाःस्था जगाद जगदेकमुदे तवास्तु

पाण्ड्येन पाणितलपीडनमीश्वरेण ।

लेखेव काञ्चनमयी भवती विभातु

रुच्येन मेचकरुचा निकषोपलेन ॥२॥

अध्यैष्ट यः सकलकामरहस्यशास्त्र—

मभ्यस्यताद्रतिरहस्यमनङ्गरङ्गात् ।

अङ्गे तवेव नखखण्डनमण्डनेन

रागारुणेन नयनेन सरागलक्ष्म्याः ॥३॥

अस्यारियौवतकुचौ वनकुम्भिकुम्भ—

बुद्ध्या हरिः प्रविददार पुनारुदत्याः ।

शौकेन दाडिमकणप्रतिमान्निभाह्य

दन्तान्मुखं वरतनोर्बत दश्यते स्म ॥४॥

नेदं गर्जितमूर्जितं रणरणतूर्यस्वनाडम्बर—

स्तस्येयं करवालिका नवतडिनैवाम्बुदाः कुम्भिनः ।

एतत्सैन्यरणाङ्गणादरिगणस्रैणानि भीतद्रुता—

न्येवं वारिदवारमेत्य मुमुहुर्वन्यासु नेशुर्मुहुः ॥५॥

अस्योद्दन्तुरदन्तिनः परिलसत्कादम्बिनीश्यामलान्

सिन्दूरारुणकुम्भविभ्रमभृतः सङ्ग्रामरङ्गोद्धुरान् ।

तत्सायन्तनरागसङ्करतमः संलक्ष्य शङ्काकुलाः

साहस्यारिभुजासहस्रकिरणाः शङ्केऽस्तमीयुर्द्रुतम् ॥६॥

अस्योद्दामचरित्रचित्रिततनोश्चित्रं यशो जृम्भते  
 सद्यस्त्रीणि जगन्ति पाण्डुरस्यति प्राग्भारभामण्डलैः ।  
 तत्तादृक्प्रतिपक्षपक्षवदनं नीलीचक्रार क्षणा --  
 द्रक्तानि प्रकरोति तानि सुहृदां हृद्वक्त्रपद्मान्यपि ॥७॥

प्रत्यर्थिक्षितिपालवंशविपिने संस्फोटसङ्घट्टतः  
 सम्भूतोऽस्य भुजप्रतापदहनो जागर्ति विश्वत्रये ।  
 यस्येमाः स्फुटविस्फुलिङ्गकणिका भास्वान्भिदुर्भैरवे  
 भास्वद्भालविभावसुश्च हुतभुवारांनिधौ वाडवः ॥८॥

अस्मिँस्ततस्तरुणि ! तारतरङ्गितानि  
 दृष्टेः प्रसादय रसादनिमेषितानि ।  
 क्षोणीभुजि क्षणविभारुचिभासुराङ्गि !  
 श्यामाङ्गभाजि भज भूषणभूष्यभावम् ॥९॥

अस्य स्तुतिं सुवदनावदनान्निपीय  
 राज्ञो न राजतनया रजति स्म तस्मिन् ।  
 अन्यादृते हि पुरुषे परुषायते वा  
 वाचस्पतेरपि वचो रचितप्रचारम् ॥१०॥

जन्याजना नृपसुतां विरतां विमृश्य  
 निन्युर्नृपान्तरमथान्तरलक्ष्यदक्षाः ।  
 भङ्गान्तरं शशिकरा इव वाद्धिवेलां  
 लब्धोदयास्तरलितां नु बलक्षपक्षे ॥११॥

तां दर्शकाऽथ निजगाद कुरङ्गनेत्रेऽ-  
 मुष्मिन्नुदारचरिते चरितार्थयाशु ।  
 स्वं यौवनं किल कलिङ्गधराकलावा-  
 नानन्दयत्वयममूं तव दृक्चकोरीम् ॥१२॥

ख्यातो महेन्द्रघरधीरमहेन्द्र एष

कालिङ्गकुञ्जरघटापरिघट्टनेन ।

स्वापीनतुङ्गकुचचूचुकविभ्रमाभां

शोभां नु पश्य दयितस्य भुवोऽस्य शैले ॥१३॥

एतस्योद्धुरसिन्धुरैरपि मृधे क्रान्तां पुनर्जङ्गमै—

जानानो धरणीधरैः स्म धरणीं धीरः पृथुः पार्थिवः ।

एतत्सङ्गरसङ्गताऽभरसमज्यामध्यमध्यासितो

भूयो भूधरभूरिभारहरणे मेधां विधत्तेराम् ॥१४॥

एतत्तुङ्गतुरङ्गसंहतिखुरोल्लेखकृतक्षमातल—

क्षेत्रेषु क्षितिभर्तुरुज्ज्वलयशो बीजं करः किङ्किरन् ।

निस्त्रिशक्षतवैरिवारणगलद्रक्ताक्तमुक्ताकण—

व्याजादस्य निरस्य दस्युयवसान्युद्गाढमुद्गाहते ॥१५॥

एतत्प्रतापदहनोत्थितधूमभूम—

लेखैव यत्किल करे करवाल एषः ।

चेदन्यथा कथममुष्य सपत्नपत्नी—

नेत्रेषु कन्दलयति स्रवदश्रुबिन्दून् ॥१६॥

यस्माद्दैवतरान्निवासरपरीवाहस्थितिर्नाकिनां

यस्यास्ति प्रतिमानमौर्वदहनोऽभोराशिसर्वङ्गषः ।

नूनं यः पतिपक्षपक्षजयशो नक्षत्रभाभ्रंशकृत्

स प्रोद्यत्तमसत्प्रतापतपनो विश्वेऽस्य विद्योतते ॥१७॥

एतत्संयुगसांयुगीनविलसद्दोर्वलिभलाहत—

द्वेषिल्लीकरकम्बुकङ्कणविशच्छेदाशनैकस्पृहा ।

अस्यामित्रकलत्रनेत्ररुदिताम्भोनिर्ज्ञरे खेलति

क्षोणीमण्डलमण्डनं किल यशो हंसालेरिन्दूज्ज्वला ॥१८॥

तामालिरालपदथो तदभीप्सितज्ञा  
 क्रीडाशुको मुकुटलोहितरत्नराशौ ।  
 स्वत्रोटिकोटिमवलोकथ दाडिमानां  
 भ्रान्तः कणान्क्षिपति भामिनि । मरुमानः ॥१९॥

अप्रस्तुतेन लपितेन ततः सदस्या—  
 स्तस्या बभ्रुवरभिनेयविलासहास्याः ।  
 मग्लौ महेन्द्रधरशेखर एष वीक्षा—  
 पन्नो विपन्न इव तेन निराकृतोऽभूत् ॥२०॥

बालामनैषुरपरं च परंतपं ते  
 विज्ञाय चेष्टितमतोऽथ विमानवाहाः ।  
 पद्माकरात्सुरभितां मकरन्दशीता  
 देशान्तरं मृदुतरा इव गन्धवाहाः ॥२१॥

तां भू पुरन्दरसुतामवदत्सुवेत्रा  
 भूपान्तरं तरलितेन विलोकितेन ।  
 स्वापाङ्गरङ्गततरङ्गतरङ्गितेन  
 नेपालपालमसितभ्रु ! निभालयामुम् ॥२२॥

नीवृत्यमुष्य मृगनाभिसनाभिगन्ध—  
 स्तत्त्वन्मुखानिलनिभो ननु वाति वायुः ।  
 त्वत्कामकेलिकलितश्रमवारिबिन्दून्  
 मन्दं मुदेव नुदतात्परिचारकोऽसौ ॥२३॥

पङ्केन तन्मृगमदस्य विचित्रपत्र—  
 वल्लीं तनोतु कुचमण्डलमण्डनाय ।  
 स्वार्द्रापराधशमनाय तवानुराग—  
 वल्लीं नु पल्लवयतादयमत्र मूर्ताम् ॥२४॥

जन्येऽदःपरिपन्थिनिर्भरगलहानाम्बुदश्यामल--

प्रोद्दामद्विपकुम्भतां व्यदलयच्चण्डांशुचण्डासिना ।  
चण्डि ! त्वामनुनेतुमेव तदसौ तां त्वत्कुचस्पद्धिनीं  
मत्वाऽस्या वरिवस्ययाऽस्य किमु नो सद्यः प्रसादोद्यता ॥२५॥

निःशेषक्षितिपालशेखरमणे ! प्रेम्णाऽनुनीय त्वया  
संश्लिष्टा विजयेन्दिराऽनवरतं नाहं पुनर्जातुचित् ।  
इत्येनं विगणय्यनिर्गतवती भीर्भामिनी कोपिता  
शत्रूणां रणरङ्गमङ्गसपदि स्मोज्जासयत्यञ्जसा ॥२६॥

मूर्ते वीररसोऽयमस्य युगपद्वीरस्य मूर्तौ ध्रुवं  
युद्धायोद्धतकन्धरस्य निरगात्सेना यतः सात्त्विकी ।  
रोम्णां कोटिरियं स्वमौलिमुकुटालङ्कारलक्ष्या महान्  
पारे वा गुरुविक्रमस्य महिमा च्छेकैर्न कैर्वर्धते ॥२७॥

गुञ्जाहारमपास्य मौक्तिकलता किं कण्ठभूषा कृता  
त्यक्त्वा वल्कलवाससं सुतनु ! ते कोऽयं दुकूलग्रहः॥  
मायूरच्छदरीदयेति नलिनं किं कर्णपूरीकृतं  
हीहीत्यस्य वने वनेचरशतैः स्त्रैणं द्विषां हस्यते ॥२८॥

एनं ततः स्मरशरप्रसरत्प्रताप-  
सन्तापितं निजदृगं चलचापलेन ।  
निर्वापय त्वमयि ! सन्मृगनाभिमिश्र-  
कर्पूरपूरपरिवाहनिभेन भीरु ! ॥२९॥

तस्मात्तिरश्चरशिरःपरिभावेन  
सम्भाव्य तामुपरतां शिबिकाधुरीणाः ।  
शत्रुंतपं परमथ स्म नयन्ति पद्मात्  
फुरलश्रियं कुमुदखण्डमिवेन्दुपादाः ॥३०॥



तत्सम्मुखे न च मुखेन निरूपयन्ती  
 राजन्यमन्यमथ वेत्रवती बभाण ।  
 एनं वृणीष्व मलयाद्रिमहेन्द्रमिन्द्र-  
 मातङ्गगामिनि । महेन्द्रपरार्ध्यशोभम् ॥३१॥

एष त्वदीयमुखमारुतसौरमर्द्धि-  
 संस्पर्द्धिनं मलयजं विधुरीकरोति ।  
 पाषाणघर्षणकुठारभिदाप्रयासै—  
 स्त्वद्वासितश्चसनपानविलासलुब्धः ॥३२॥

त्वां चन्दनद्रुमवनीं परिरब्धुकामः  
 सद्भोगभागिव मुजङ्गमपुङ्गवोऽयम् ।  
 प्रत्यङ्गसङ्गकृतरङ्गतरङ्गितेन  
 शोभां बिभर्तुं मुखमारुतपानपीनः ॥३३॥

अभ्यर्णमस्य नगरस्य विदूरशैलः  
 क्रीडाचलस्तव भवत्वविदूरवर्ती ।  
 यः संततं मुदिरमेदुरगजितेन  
 रत्नाङ्कुरोत्पुलकितानि तनौ तनोति ॥३४॥

घटते मौनमृजुत्वमाश्रुतिपथं गन्ता परेषां परं  
 रक्तानि व्रतयत्यरक्तजनतारागाय बद्धादरः ।  
 तद्विश्रम्भविधायिचेष्टितचणो मुख्यक्षितेरीशितुः  
 काण्डस्ताण्डवयत्यहो ! व्रतविधौ दम्भं महादाम्भिकः ॥३५॥

दुग्धाम्भोधीयवेलावलयनिलयितश्चन्द्रिकाचन्द्रबिम्बे  
 प्रांशुप्रालेयशैलस्तरलतररुचस्तारकास्तारहारः ।  
 कम्बुः किं वा सुरेभः फणिपतिफणता स्वर्गगङ्गातरङ्गा  
 दिङ्नागा विष्टपेऽस्य प्रविलसति लसत्कीर्तिमूर्तिप्रकाशः ॥३६॥

एतद्वैरिक्षितीशक्षयचकितवधूः कन्दरामन्दिरान्त—

रुर्लीना नीलालिमालां द्रुमकुसुमरसास्वादलीनां निपीय ।  
भ्रान्त्या जम्बूफलानां क्षुधितशिशुभृशाश्वासनोदस्तहस्ता  
यावद्गृह्णाति तानि प्रययुरथ दिशस्तावदुड्डीय भृङ्गाः ॥३७॥

भ्रुमङ्गभङ्गुरमुखीं परिपीय राज्ञां

भूषामणिष्वनुकृतां शिविकां वहन्तः ।  
तां निन्यिरेऽन्यनृपतिं शशिनः समुद्रा--  
ल्लेखां ललाटमिव शिल्पविदेऽष्टमूर्तेः ॥३८॥

साऽबीभणद्धरणिशक्रसुतां प्रतीत्य

राजान्तरं कनकवेत्रधरोचितज्ञा ।  
काञ्चीपुराधिपतिरेष धिनोतु चित्तं  
काञ्चीविमुद्रणपटुस्तव काञ्चनाभः ॥३९॥

एष त्वदाननसुधां वसुधासुधांशु—

नेत्राम्बुजैः किल पिपासति कोमलाङ्गि ।  
अस्याङ्गकान्तिसरसीषु विजृम्भतां वा  
नीराजनाय तव नेत्रसरोजराजी ॥४०॥

एतेन द्विविधोऽपि मार्गणगणस्वार्थः कृतार्थीकृत—

स्त्यागेन द्रविणस्य जीवितधनत्यागेन विद्वेषिणाम् ।  
एतस्यैव गुणो द्विधाकृततनुः कर्णान्तगामी बभू—  
वाद्यश्चाथ परो विसारिविभवो विश्वत्रयं न्यानशे ॥४१॥

वासिष्ठाम्बुभरो महेभमकरः खड्गस्फुरद्वाडवः

सेनोल्लोलचयः पदातिलहरी पूरोऽस्य जन्यार्णवः ।  
प्रत्यर्थिक्षितिपैस्तदाशुगवशैश्चित्रं त्वरित्रं विना  
भेदे यत्तरणेरपि स्फुटमहो ! तीर्णः सकर्णैः परम् ॥४२॥

एतत्प्रतापतपनोष्मभरैस्तपत्—

रुज्जुम्भतेऽरिसदनेषु सदोप्रतापैः ।

तत्र प्रपामरिवधूः शुशुभे वहन्ती

नेत्राश्रुपूर्णकुचकुम्भमयीं सुपुण्या ॥४३॥

मन्दारो नात्युदारो बहुलफलभरैर्भङ्गुरः शाखिकल्पो

प्रावा चिन्तामणिर्वा पशुरमरगवी या पयोदानदक्षा ।

एतेनैवार्थिसार्थी वितरणविभवेर्यत्कृतार्थीकृतस्तत्

सन्ति व्रीडाजडाभाः सुरविटपिनिभास्ते तिरोभूय भूयः ॥४४॥

आजानुबाहुजनितोऽपि जगन्ति गन्ता

सद्यश्चतुर्दशमहोभिरहो ! विसारी ।

प्रोद्यत्प्रतापतपनोऽस्य तवारिनारी—

हृत्सूर्यकान्तमणिषु प्रतिबिम्बितोऽभूत् ॥४५॥

प्राज्ञाऽथ सा क्षितिपतौ गरिमालयेऽपि

दृष्टि बबन्ध न च रागिणि तत्र चित्रम् ।

यद्वा विरुन्धति विधौ गुणिनां गुणौघः

स्फारोऽपि न स्फुरति हा ! परिहारदक्षे ! ॥४६॥

तामन्यवीक्षणपरां सुतरां समीक्ष्य

जन्यो जनस्तदपरं नृपमानिनाय ।

नापेक्षते हि करणीयविधौ प्रचारं

वाचामहो ! सहृदयो हृदयोदितज्ञः ॥४७॥

भूयः कनत्कनकदण्डधराऽऽह तन्वीं

संज्ञाप्य भूपमपरं नयनाञ्चलेन ।

द्राक्कीटकाधिपतिद्वामकरी विधत्तां

त्वत्कायकान्तिहृदिनीषु विवर्तनानि ॥४८॥

भ्रामं भ्रामं दिग्भवदन्तावलदन्तान्  
 क्रामं क्रामं चन्द्रमहेन्द्रेभफणीन्द्रान् ।  
 कारं कारं चैतदरिस्त्रैणकपोले  
 विश्रान्तैतत्कीर्तिपरिस्फूर्तिरिहाङ्गम् ॥४९॥

जिह्वत्वं सविधे दधाति समरे विभ्रत्पराचीनता—  
 मुच्चौर्धोरकठोरनिस्वनचयं मुञ्चत्यजस्रं धनुः ।  
 तत्तस्यापि गुणग्रहप्रवणधीर्धुर्यो गुणग्राहिणा—  
 मेष प्राप्तविशेषशेखरशिखारत्नैर्ना कैर्वर्ण्यते ॥५०॥

एतस्य चन्द्रकरसान्द्रयशःप्रकाशैः  
 प्रदाविता द्विषदकीर्तिमषीतमिस्रा ।  
 दिक्चक्रवालचरमान्तमियाय चक्र—  
 वालस्य भूभृत इव श्रियमुद्वहन्तम् ॥५१॥

तद्विश्वविश्वमपि विश्वजनीनवीर्य—  
 विश्वम्भरोदरदरीगतमाशु भृत्वा ।  
 इतद्यशांसि निरगुः किल पद्मनाभ—  
 नाभीसरोरुहमिषादतिपाण्डुराणि ॥५२॥

हन्मूर्द्धाद्विषदभिमानभूमिरेखां  
 हित्वाऽन्यान्सदयमयं शरैः प्रतीकान् ।  
 तदद्वैतं किल विददार दूरदर्शी  
 नीतिज्ञो न खलु निरागसः क्षिणोति ॥५३॥

एतत्खड्गोद्धारितारिस्त्रियः स्नाग्  
 वक्षोधाता व्यग्रहस्ताग्रटङ्कैः ।  
 प्रोत्तुङ्गासु स्वस्तनाधित्यकासु  
 स्मैतत्कीर्तेः सुप्रशस्तितं लिखन्ति ॥५४॥

स्वीये मुखाम्बुरुहिनालमिवाङ्गुलि सा  
 सद्यो ददौ तदुदितं प्रतिषेधयन्ती ।  
 मत्वाऽथ जन्यजनताऽन्यमजीगमत्तां  
 भूपं मधुःश्रियमिवाशु वनान्तराणि ॥५५॥

द्वाःपालका नृपकनीं कमनीयवाचा  
 सा प्रत्यपीपददथ प्रतिभा प्रगल्भा ।  
 एतं नितम्बिनि ! रहो मिथिलाक्षितीन्द्र—  
 मानन्दय स्वनयनाञ्चलचन्द्रिकाभिः ॥५६॥

त्वद्वक्त्रसारसरसीरुहसौरभाद्दय—  
 सौन्दर्यमञ्जुमकरन्दमिलामहेन्द्रः ।  
 एष स्वदृग्मधुकरीयमलेन पीत्वा  
 स्वभोगिभोगभरताविमुदं मिमीताम् ॥५७॥

एतत्कीर्तिविवर्तशुभ्रपटलैराप्लाविते विष्टपे  
 तारास्तारकराजमुत्तरलिताः सम्मार्गयन्ति ध्रुवम् ।  
 शम्भुः स्वं च भुजङ्गपुङ्गवमिभं भ्रान्तो दिवीन्द्रो मृगं  
 चन्द्रो मार्जति दुग्धसिन्धुमधिकं धैर्येण ताक्ष्यध्वजः ॥ ५८ ॥

द्विषत्कीर्तिव्रातं कृतकमपि पुञ्जीकृतमसौ  
 जगन्मूषागर्भं मिहिरकरजालोज्ज्वलतरैः ।  
 स्वतेजोऽग्निज्वालैर्धमति कमनीयं समभव—  
 द्यशस्तारं सारं गुरुतरममुष्य स्म निचितम् ॥५९॥

इदमरिधरणीधवाः सदाराः  
 किल गहनाद्गहनान्तरं प्रयान्तः ।  
 अथ कथमपि काननायमानं  
 स्वपुरमगुः सशिवारवं क्रमेण ॥६०॥

समागमदयं किल प्रचुरपौरलोकादिति  
 ध्वनिः श्रुतचरः शुक्ैर्मुहुरपाठि वन्यासु सः ।  
 अदःसमरसङ्गरद्रुतविपक्षिपक्षो मुधाऽ—  
 विशद्वनमभूद्विभातमिव घट्टकुट्ट्यां पुनः ॥६१॥

स्थाने स्थेम्णा स्थितिमुपगतोऽहर्मणिनैककाष्ठां  
 कुञ्जे दावं द्रुतमनुययौ दाववह्निर्निलीय ।  
 युक्तं चैतद्भुजभुजगजस्वप्रतापप्रकाशा—  
 दौर्वाग्निं धिक्खलजलशरण्याश्रितं भूरिभीत्या ॥६२॥

एतत्प्रध्वस्तहस्तिप्रतिभटसुभटानेयसार्द्राङ्गकाष्ठ—  
 ब्रातैतद्दोःप्रतापानलमिलनलसद्भूमलेखा किमेषा ।  
 नन्वेतद्वाजिराजिप्रखरतरखुरक्षुद्यमानक्षमोत्थ—  
 प्रारब्धोऽप्रघातप्रचुरतररजोराजिराजत्तमिसम् ॥६३॥

ततो जनीजननयनामृताञ्जनं  
 सभाजनं स्वरुचिमरीचिवीचिभिः ।  
 सभाजयन्त्यभिमत्शौरिमैककं  
 हृदा स्मरन्नयननिमीलनेन सा ॥६४॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेय—  
 पण्डितेशश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाग्नि महाकाव्ये  
 मुद्रितनृपकुमुदो नाम पञ्चमः सर्गः ॥५॥

॥ षष्ठः सर्गः ॥

राजव्रजादपगमय्य जनीं वहन्तो  
वैनीतकं विनतबन्धुरकन्धरांशाः ।  
तां निन्यिरे धनदयुग्ममिवावशिष्टं  
प्रीतिं रथाङ्गमिथुनं हरिदश्वपादाः ॥१॥

उत्सारिका पुनरभाषत राजराज  
एष स्वयम्बरमहे तव राजमानः ।  
त्वं राजपुत्रि ! नवरागपरागरज्य—  
न्नेत्राब्जभङ्गिभिरमुं न च वीक्षसे किम् ॥२॥

अस्यालकापुरपुरन्दरसुन्दरस्यो—  
दीचीपतेरिव शची भव सारसाक्षि ! ।  
तत्रेन्द्रनीलमणिकुट्टिमरभ्यहर्म्य—  
वापीषु तेऽस्तु मुखमम्बुजविभ्रमाय ॥३॥

सोमार्धधारिवपुरर्धहरा मृडानी  
सौभाग्यवत्प्रणयिनीनिवहेषु सीमा ।  
तां त्वं प्रसाद्य दयितप्रियतारहस्यं  
विज्ञास्यसि अदिमवश्यमवश्यभाव्यम् ॥४॥

एतस्य पूर्हरशिरःस्फुटचन्द्रिकाप—  
देशोन्मिषन्नयनभङ्गिभिराशु वीक्ष्य ।  
त्वां गुह्यकेश्वरविमानशिरःपताका—  
लोलाञ्चलैः समभिनेष्यति सा सहर्षम् ॥५॥

एतद्विमानपरिणाहिवितर्दिवतीं  
मन्दार एव तव दास्यति कर्णपूरम् ।  
कारोत्तमं नयनविभ्रमदानदक्षं  
क्षौभं सरागमणिमञ्जुलमण्डनानि ॥६॥

अस्याक्रीडे लीनसन्नीलरत्न-

क्रीडाशैलः स्वर्णरम्भापरीतः ।

तत्रानेनामावहन्ती विहारं

किं नाभिरुयां लप्स्यसे स्वर्वधूनाम् ॥७॥

अस्यारामेऽशोकतरुः पल्लवसूति

धत्तां शिञ्जन्मञ्जुलमञ्जीरसनाथैः ।

पादाघातैर्विभ्रमवत्या नु भवत्या

हर्षोद्रेकाद्रोमतति तामिव सद्यः ॥८॥

पुष्पोद्भेदं प्रमदवने चाग्नेथी

मत्तस्त्वत्तो वदनसुरागण्डूषम् ।

तत्रामुष्य प्रणयवती प्रेमाद्रै

स्वादं स्वादं वहतुतरां गौरश्रीः ॥९॥

त्रस्यच्चकोरचिकुरां दशमाकलय्य

तस्या घटप्रतिभटस्तनविभ्रमायाः ।

मूर्त्यन्तरं हरसखस्य निदर्शयित्वा

सा दण्डिनी पुनरभाषत भाषितज्ञा ॥१०॥

अद्भुतं नु वरवर्णिनि ! मन्ये

किन्नरेश्वरममुं न वृणीषे ।

एष वै भवसखो नरधर्माऽ-

गण्यपुण्यजनतामहनीयः ॥११॥

चारुचामरनिकायपीतो

यः स्वदानविदितोरुचरित्रः ।

कुञ्चितश्रु ! नरवाहनशाली

राजराज इति राजति सोऽयम् ॥१२॥



श्लिष्टां गिरं ननु निपीय नरेन्द्रपुत्री  
 दोलायितेन मनसा विचिकित्सति स्म ।  
 किं किन्नरेश्वरमु वाव नरेश्वरं वा  
 सेयं मदर्थितपतिं नु परार्थगूढम् ॥१३॥

शौरिर्यदा किमु घनाधिपरूपधेयं  
 धत्तेऽथ हन्त किमहं नु वहे विमोहम् ।  
 यद्वा चकास्ति किल गुह्यकदिव्यकाय—  
 च्छायच्छलव्यवहितो दयितो ममैषः ॥१४॥

आः । कालकूटकलना किमियं सुराणां  
 यन्मानुषोषु कृतकैतवनाटकानाम् ।  
 तेऽभ्यर्थिता हि दयितं दयितं ददन्ते  
 प्रत्यूहयन्ति यदि कृत्यमिहौचिती का ॥१५॥

दिण्टेन यश्च यदलीकतले व्यलेखि  
 सोऽहोऽपि गर्हिततमोऽस्य भिदः स्पृहायाः ।  
 उग्रैः प्रभाकरकरैर्मुमुदेऽरविन्द—  
 मोषं प्रयाति घनसारनिभैस्तुषारैः ॥१६॥

सद्वा[क्]परां क्षितिपुरन्दरनन्दिनीं सा  
 सम्भाव्य भाषितुमुपाक्रमत प्रगल्भा ।  
 किं निश्चलेन मनसा किल निश्चिकाय  
 नामुं सुकेशि ! भवती जगतीमहेन्द्रम् ॥१७॥

आन्तिः का नु मृगाक्षि ! शक्तिशकले रूप्यभ्रमोऽज्ञानतः  
 सारूप्यादथ चेन्न धर्मिणमतिक्रम्यापि धर्मप्रथा ।  
 व्यक्तिः स्फूर्तिरिति द्वयोः खलु पृथक्त्वत्त्वं तु निर्णयितां  
 भूस्पर्शादपि भू पुरन्दरममुं विद्धि स्वमोहं जहि ॥१८॥

विश्वत्रयीविदितयादवतुङ्गवंश—

मेनं स्थिता विशदकीर्तिविलासिकाश्रित् ।  
रङ्गाङ्गणे त्रिजगतां किल नर्त्ततीति  
कुन्देन्दुहारहरहासहिमाङ्गहारैः ॥१९॥

अस्याङ्गजेन जनतामवताऽवतारै—

गोवर्धनोद्धरणबन्धुरदोर्धरेण ।  
विश्वद्रुहां किल कुलं निहनिष्यते द्रा—  
गित्यायतौ विदुषि ! कालविदो वदन्ति ॥२०॥

येन स्वतोऽनुभवता भवतारकेण

ज्ञानैकताननिलयां परमात्मविद्याम् ।  
मायामिषाद्विषयिणाऽपि तटस्थितेन  
मोक्षयन्त उतिभिरहो रमणीयगोप्यः ॥२१॥  
॥युग्मम्॥

एतत्कुलेऽथ कलिकालकलङ्कपङ्क—

प्रक्षालनत्रिपथगासलिलप्रवाहः ।  
नेमिल्लिकालकलिताऽखिलविश्ववेदी  
तीर्थाधिपः प्रसवितेति विदुः पुराणाः ॥२२॥

प्रांशुप्रतिक्षितिपतिस्फुटदर्पसर्प—

प्रद्रावणप्रवणविक्रमवैनतेयः ।  
अध्यास्त एष मथुरां पृथिवीमहेन्द्र—  
श्चन्द्रावदातगुणमौक्तिकहारहारी ॥२३॥

सन्माथुरीसवनवारिविगाहधौत—

नेत्राञ्जनप्रचयमेचकितप्रवाहा ।  
वेणीव भूमियुवतेर्यमुनाऽस्य पुर्यां  
श्वित्कालकालियशिखामणिमण्डिताऽस्ति ॥२४॥

विस्रस्तमार्यनवपल्लवतरुपगन्धो—

दगारौघभाञ्जिसुरया सुरभीणि तत्र ।

दिव्याङ्गनासुरतकेलिमुदीरयन्ति

गोवर्धनाचलनितम्बगुहागृहाणि ॥२५॥

मायूरबर्हमुकुटाङ्कितवरुवानां

हुङ्कारजोदजसमीरितगोगणामाम् ।

उन्नालनीलनलिनाभतमालभाले

वृन्दावने त्वममुना कुतुकानि पश्य ॥२६॥

तत्र प्रतीरवनकुञ्जनिवासिवान—

प्रस्था कलिन्दतनया नु विगाह्यमाना ।

लीनालिफुल्लनलिनीकलनीयलीलां

सा वावही तु तदनेन समं भवत्या ॥२७॥

तत्र द्रुमान्ब्रततिभिः स्तम्बकस्तनीभिः ।

संश्लेषितान्किशल्याधरमञ्जुलाभिः ।

आजृम्भमाणपवमानचलाचलाभि—

रेतेन हृद्यदयितेन निभालयाशु ॥२८॥

योऽधीती कामशास्त्रे सुभगनरशिरःशेखरः सत्कुलीनो

मूर्तः शृङ्गार एषोऽद्भुतसकलकलाम्भोधिपारीणसम्बित् ।

नीलीरागो भवत्या करिदशनलसत्कङ्कणाभ्यां भुजाभ्या—

माश्लिष्टस्तत्र चित्रं वहतु रविसुता नीरवानीरकुञ्जे ॥२९॥

रोचिः कोशाद्गुचीनां शुचिरुचिरचयं सर्वमादाय नूनं

वेधा व्याधूतमोहो विदध इव मुखं चन्द्रबिम्बानुबिम्बम् ।

शेषैः पङ्काङ्कशङ्कां कचनिचयममुष्योत्तमाङ्गे दधानै—

र्धन्ये मन्ये रुगंशैरहमहमिकया केकिबर्हातिगर्हाम् ॥३०॥

निर्भीकोऽप्येष भीति वितरति समरे वीरवैरिप्रभूणा—

माराद्ब्रह्मोमारविन्दात्परिमलमिव तद्बर्गसर्गाद्यशो सत् ।

शुम्भच्छुभ्रांशुधामाद्भुतधवलतरस्फारहारातिगौरं

चित्रं चित्तेव चञ्चत्तरशफरचलल्लोचनेऽमुं निधत्स्व ॥३१॥

एतस्यारातिवारः शरनिकर इति द्वैतमास्तेऽभियुद्धं

सन्नद्धं वेपथुं वा कथमपि च न सीत्कारमावीःकरोति ।

वैसुर्यं प्राप नापि क्वचन किमपि ना धीरतां वा परं तच्च—

चित्रं मित्रं विभेदैक इति तदपरोऽमित्रमत्यन्तगामी ॥३२॥

एतत्तेजो हव्यवाहे पतङ्गो

होता पातादेव मत्वेति वेधाः ।

तत्तत्तापव्यापनिर्वापणार्थं

चक्रे वारांनाथपाथः परीतिम् ॥३३॥

ज्याघटनोच्छङ्किणमुपरागं

वैरिकुलेन्दुव्यसनसरागम् ।

पश्य शयेऽस्य स्फुटमधिरागं

यूनि ! किमस्मिन्भजसि विरागम् ॥३४॥

व्योमन् ! स्वं तनु विस्तृणन्तु ककुभः पृथिव ! प्रथिग्णो भरं

यायाः पूर्वयशोऽतिशायि निरगात्स्वैरं नु शौरैर्यशः ।

वीक्षध्वं परिपक्वसत्कणगणोच्छ्रवासादिव स्फोटति

ब्रह्माण्डं किल दाडिमीफलमिति द्वारेऽस्य बन्दिध्वनिः ॥३५॥

एतद्वैरियशो रसेन्द्ररसनाद्भूयोऽणुभिः पुञ्जितो

भेजे मन्दर एष दोषकलुषां दुर्वर्णवर्णश्रियम् ।

भूयोऽदःप्रतपत्प्रतापदहनाध्मातः परीपाकत—

श्चञ्चत्काञ्चनरोचिराशुरुचिरं धत्ते नु जानीमहे ॥३६॥

एतत्काम्बोजवाहप्रखरतरखुरक्षुण्णधूलीतमिस्रै—

रुस्रैर्भास्वाननुष्णैर्वहति विधुतुलां रात्रितां वासरश्रीः ।

घौर्भूमीभूय भूयः किमु जगदजगदभाति भाति क्रमाद्वा

कूपारः प्रासपारः कृतकृतकमहासेतुजस्कन्धबन्धः ॥३७॥

अदसीययशःस्कृटारविन्दे

गगनं भृङ्गनिभां विभां विभर्ति ।

रिपुकीर्तिखटीस्तृणेढि चैत-

दगुणताया गणनाङ्कवर्गलेखः ॥३८॥

मथुरा त्वमरावती महेन्द्रः

किल शौरिस्त्वमथो जनी मघोनी ।

ललताल्ललनैः सुलालितस्व—

लैलनानां तुलनामिलातलेऽपि ॥३९॥

हरिणा किमयं यद्वृहश्चे—

न्ननु नाकः किमदःपुरी यदा सा ।

तदलं भिदुरेण भासते चे—

दिदमीयज्वलदुज्ज्वलप्रतापः ॥४०॥

विषयोऽस्य महेभ्यलसन्नगरो

नगरं च बहुक्षणवन्निलयम् ।

निलयाः किलिकिञ्चितवत्प्रमदाः

प्रमदाः समदद्विपसदगतयः ॥४१॥

इह सारतरं नरजन्म ततः

सुभगं करणं शुभरूपमतः ।

मिथुनीकरणं तदिदं सदृशं

सदृशे सदृशं हि विभर्ति विभाम् ॥४२॥

सस्त्रिर्देशानेष विद्याधराणां  
 वत्रिः कन्याः कौतुकं चक्रिराभिः ।  
 तन्नीवृद्भ्यश्चाचलिस्त्वां पिपासुः  
 सत्यां सन्धां वावहिस्ताद्विवोढा ॥४३॥

श्रुत्वा कुमारविदुषी गिरमेतदीयां  
 सार्यतनीं कुमुदिनीं दरदन्तुरश्रीः  
 किञ्चित्स्फुटा मुकुलिता च जिगाय भर्तु—  
 र्त्नामादपहववशात्सविषादहर्षा ॥४४॥

अस्पृष्टमूतलमुदैक्षत यक्षकार्यं  
 शौरिं क्षितिक्षितमथ क्षितिमासजन्तम् ।  
 साक्षादबुद्धविबुधं च बुधं धवं सा  
 सानन्दमन्दपुलकाङ्कुरविच्छुराङ्गा ॥४५॥

स्वेदोदविन्दुरिव यादवपुङ्गवाङ्गे  
 निर्वापयन्विरहज्ज्वरसञ्ज्वरार्तिम् ।  
 तन्न्या व्यलोकिते नवहेमनि हीरदीप्तः  
 शृङ्गारकरूपलतया न तया कुबेरे ॥४६॥

सद्यो मणीवकमयीं धनदस्रजं सा  
 म्लायद्रुचि यदुपतेरुपकण्ठमालाम् ।  
 आलोकते स्म वरणस्रजमेष धर्ता  
 मां नादरीव नु दरादिति शङ्कमानाम् ॥४७॥

तन्निर्दिधारयिषया प्रतियातनाया  
 यक्षेश्वरस्य पुरतः स्म नतेन मूर्ध्ना ।  
 बद्धाञ्जलिं तमनुनाथति नाथ ! भिक्षां  
 देहीति मे नृपकनी त्वदनुग्रहाय्याम् ॥४८॥

सद्यः प्रसद्य निजगाद यदुं नृधर्मा  
 दूरीकुरु प्रतिकृतिप्रवणां स्वहस्तात् ।  
 तामूर्मिकां सवति मे महती हृणीया  
 दीनं विलोक्य किल वीरयते न वीरः ॥४९॥

तस्याज्ञयाऽथ यदुसूनुरनूनसम्प—  
 न्मुद्रां करात्समुदतारयदाशुहृष्टः ।  
 नैसर्गिकीं तनुरुचं विदधत्स भूमे—  
 रुत्सर्जनान्नट इव स्फुटमुद्दीदीपे ॥५०॥

तद्रूपसम्पदमकृत्रिमशोभनीयां  
 नेत्राञ्जलीभिरभितः परिपीय बाला ।  
 क्षेत्रे सुधोक्षणवशात्पुलकाङ्कुराणि  
 सा बिभ्रतीव सुदती सुतरां ललास ॥५१॥

उत्कण्ठयत्यविरतं यदुकण्ठपीठे  
 कामः स्म सद्वरणदाम निधातुमेनाम् ।  
 व्रीडा पुनः शयकुशेशययुग्ममस्याः  
 संस्तंभवत्यहह ! दौलितमानसायाः ॥५२॥

दोलायिते मृदुतनोर्हृदि ह्रीस्मराभ्या—  
 मुत्तम्भितप्रवरवृष्णिकुलातपत्रे ।  
 अध्यासितः स्फुटमिवान्यरसातिशायी  
 शङ्कार आभ्युदयिकीमधिराजलक्ष्मीम् ॥५३॥

दुद्राव हृद्द्रुतमहो दयितं नु तस्या—  
 श्रक्षुर्गतागतमपत्रपया चकार ।  
 तद्रूपदीप्तिझरसङ्करपङ्कदुर्गं  
 खञ्जीभवत्किमिव सामिपथं प्रयाति ॥५४॥

हृत्सङ्गतं दृशि तिरस्करिणीव लज्जा  
 निह्नोतुमेनमभितोऽपि बभूव यावत् ।  
 उद्भिद्यमानपुलकैर्विषमेषुरस्या  
 लक्ष्यीचकार विशिखैरिव वर्ष्मं तावत् ॥५५॥

मन्दाक्षमन्मथरसद्वयविभ्रमेण  
 द्वैरथ्यरङ्गमनुभूतवती वरोरुः ।  
 द्वैराज्यसञ्जनगरीव गरीयसीनां  
 शङ्काधियामनुपदं निरपादि पद्या ॥५६॥

उत्पिञ्जलामथ जनीं विनिशम्य सम्यक्  
 तां शौरये कनकवेत्रधरा निनाय ।  
 तस्योपकण्ठमुपनीय वधूः करं सा  
 कण्ठे वरस्य वरणस्रजमुत्ससर्ज ॥५७॥

दूर्वाङ्कुरैः शवलितां किल पुष्पमालां  
 कण्ठेन भूपरिवृढो विभरांबभूव ।  
 स्वीकारवर्णरचनां परिणीतवध्वाः  
 कामो यदूद्ग्रहहृदीव लिपीचकार ॥५८॥

दूर्वाङ्घ्रितां नवसुमस्रजमस्य कण्ठे  
 शृङ्गारमूर्तिमिव सोत्पुलकां लसन्तीम् ।  
 सा साभ्यसूयमवलोक्य नताननाब्जा  
 भाति स्म भावकलुषा किल भामिनीव ॥५९॥

सद्यस्ततः पुरपुरन्ध्रिगणः सहर्षं—  
 मुत्कण्ठितः परभृतप्रतिमानकण्ठः ।  
 उद्गायति स्म कलमङ्गलगीतिमालि—  
 वृन्दैरुल्लुमधुरां मधुरस्वरेण ॥६०॥



वाष्णेयवक्षसि मणि प्रतिभासमाने  
 मध्ये कियत्प्रतिमितं च कियद्बहिःस्थम् ।  
 शोभां बभार सुममाल्यमिव प्रसून—  
 बाणस्य बाणततिरर्धनिमग्नभागा ॥६१॥

प्रोद्यत्प्रमोदपुलकाङ्कुरविच्छुराङ्गी—  
 मध्यास्यया स्मरघनुर्धर एष शौरिम् ।  
 लक्ष्यीचकार विशिखाऽभ्यसनैकवेदीं  
 तन्वीमिवेति किल सा सुतरां बभासे ॥६२॥

तस्यास्तनूरुहततिः प्रवरां वरस्य  
 लक्ष्मीं निरीक्षितुमिव स्फुटबालभावात् ।  
 उदप्रीविकामकृतसम्भदसम्प्रकाश—  
 प्रत्युज्जिहानपुलकाङ्कुरिताङ्गयण्टेः ॥६३॥

प्रादुर्भूव यदुपस्य करे नवोढा—  
 विन्यस्तदाम्न इह यत्किल घर्मवारि ।  
 निःपश्यमानकरपीडनमङ्गलस्य  
 कामः करोदकमिव स्वयमुत्ससर्ज ॥६४॥

चेत्पुष्पचापशरमारुतदोलनेन ।  
 तूलायिता मृदुतनोस्तनुरस्तु कम्प्रा ।  
 मृमृद्यदा यदुपतिर्बत वेपते त—  
 च्चित्रं स्म काममितरत्र महत्यनास्था ॥६५॥

स्पर्शात्करस्य नवकुङ्कुमलकोमलस्य  
 स्तम्भो वरस्य सुतनोरजनिष्ट यश्च ।  
 मन्ये प्रसूनशरनव्यशरव्यदम्भ—  
 स्तम्भो नवप्रणयिनीप्रणयप्रसूतः ॥६६॥

चन्द्रः कुहूमिव तथा जरसं वयस्थः

सम्राड्द्रिद्रिद्रपदवीं निशमब्जिनीव ।

स्राक्कालिकां सकलराजकमापदेनं

दृष्ट्वा वृतं कनकया वसुदेवदेवम् ॥६७॥

राकामिवाभृतकरो नलिनीमिवाको

गीर्वाणवारण इवाभ्रमुमभ्रमेण ।

व्याकोशितां सुमनसं किल चञ्चरीको

लब्ध्वा यदुश्च कनकां भृशमुल्ललास ॥६८॥

अच्छोद्य किन्नरपतिर्यदुमच्छसूक्तैः

स्नेहामृतस्तिमितनिर्झरचाटुगर्भैः ।

स्वीयं यज्ञश्च यमिवाजितमभ्यवर्षत्

पुष्पोच्चर्यं सुरतरुप्रभवं नभस्तः ॥६९॥

पौलोमीशकयोर्वा सितकरकुमुदिन्योर्विवस्वन्नलिन्यो—

स्ताम्बूलीपूगयोः किं द्वयमुत शिवयोरर्णवस्वर्गनद्योः ।

अद्वन्द्वं द्वन्द्वमेतद्यदुपकनकयोर्ना तुला विश्वविश्वं

हीत्यानन्दोर्मिसान्द्रा दिवि नु दिविषदां दिव्यगीः प्रादुरासीत् ॥७०॥

एतत्सर्वाभिसारप्रसरशरभरच्छन्नमुन्नीय सेधा

सङ्काशं व्योम चैतद्रिपुनिवह इतो भीतभीतोऽयमानः ।

कान्तारे यावदास्ते शललचलचलान्धाविधोऽप्यत्र वीक्ष्य

व्यग्रोऽभूद्वा प्रतीके शरणमपि शरण्यं भियां भागधेये ॥७१॥

त्वं भूभृद्वृष्णिस्सुनुर्मलयगिरिरहो ! त्वद्भुजश्चन्दनद्रुः

साक्षात्कौक्षेयकोऽस्मिन्निव निवसति यद्व्यालकालः करालः ।

एष त्वद्वैरिवारस्फुटविटपिदृढस्कन्धसङ्घट्टनाभि—

व्योमव्यापिप्रमुञ्चत्यतिधवलमलं श्लोकनिर्माकमार । त् ॥७२॥

एवं भूकश्यपोऽसौ पटुनिनदवदैर्बन्दिभिः स्तूयते स्म  
 दध्वान स्फारतारध्वनिभिरभिनभो दुन्दुभिर्दुन्दुगीतैः ।  
 दिव्यस्त्रीकण्ठकूजत्कलखकलितैः स्पष्टमस्पष्टवादं  
 शंसत्साराविणं तत्समभवदिव किं ब्रह्म वा द्वैतमेतत् ॥७३॥  
 ॥ विशेषकम् ॥

श्रीदः स्वां पुरमन्वगात्स च हरिश्चन्द्रोऽथ तौ दम्पती  
 मूपालाश्च निजं निजं च शिविरं यान्तः क्रमेणापरे ।  
 चक्रे चक्रतुरत्र चक्रुरधिकश्रीभावुकं भावुकं  
 सान्द्रानन्दनरेन्द्रनन्दितमहे पाणिग्रहेऽस्मिन्मुदा ॥७४॥  
 इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेयपण्डि-  
 तेश श्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये वसु-  
 देववरणं नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

## ॥ सप्तमः सर्गः ॥

अथ वृष्णिषू नुरुपकारिकामगाद्

वरभानुरूपवरवर्णिनीवृतः ।

पठतस्तदीयगुणवंशशंसनं

पटुबन्दिनः पथि दददघनं धनम् ॥१॥

करवारिदः कनकविद्युता लस-

न्नधिवर्षति स्म वसुवारि तत्तथा ।

यदुपस्य मार्गणगणैर्मनोरथा-

तिगमुज्झितं जवसवद्यथा पथि ॥२॥

अधिमूर्तिनाय मिथुनं करग्रह-

प्रतिकर्मनिर्मितिविधेर्बिधिस्सया ।

अवरोधमस्य समयोचितक्रियाः

प्रमदाः सृजन्त्विति जगाद बल्लभाम् ॥३॥

वर एष भामिनि ! वरेण्य उज्ज्वला-

न्वयसन्धया स्म जननं पुनाति नः ।

निजरूपसम्पदतुल्यश्रिया स्मर-

समयमेव निम्नर्याति किं बहु ब्रुवे ॥४॥

विदधाम लौकिकविधिं पुराविदा

मुदितं यथाश्रुतमुपश्रुतं जने ।

विनिगद्य चेति निरगादगारतः

स घराधवः परिणयोद्धवोद्धुरः ॥५॥

गणकानुवाच स च लग्नमुत्तमं

निगदन्तु दन्तुरितमंशशंसनैः ।

जगदुस्त एतदुदयास्तनिर्मलं

सुरसूरसुरशशिवीर्यवत्तमम् ॥६॥

स इयेष दातुमथ तां सुतां तदा  
 यदुपं स्वदूतवचसेत्यचीकथत् ।  
 तव पाञ्चवारि किल मन्मनोरथा—  
 झुरमद्य परलवयताद्गृहागमात् ॥७॥

अनुगृह्यतां कनकवत्यथो कुल—  
 द्वयमेव मे किल भवत्पदार्पणैः ।  
 क्व च मादृशा हि भवतः सुराचल—  
 प्रतिमस्य पीठपरिकल्पनक्षमाः ॥८॥

स ततो निपीय नृपदूतजरिपता—  
 न्यहमेमि तत्प्रणमनाय पादयोः ।  
 स्वगुरोरुदीर्यं तमिति व्यसर्जयद्  
 यदुपः प्रयातुमथ तं प्रचक्रमे ॥९॥

श्रुतदूतवागवनिपो यदुं तदा  
 गमयांचभूव कलितेक्षणक्षणम् ।  
 स शिखावलः किल गभीरगर्जितं  
 विनिशम्य वारिदमिवोर्ध्वकन्धरः ॥१०॥

अथ धीरधीः पुरुपुरन्ध्रनायिका  
 कृतदारकर्मकरणीयकर्मठा ।  
 समयस्पृशं विधिमुपादिशद्गृही  
 गृहिणी प्रमाण इह कर्मणि ध्रुवम् ॥११॥

अधिवासनाय पटवासकस्य हे  
 न सुकेशमानिनि ! चिरं विलम्बय ।  
 अयि ! वर्तिवस्तुकरवर्तमुत्सुके !  
 तनु वर्तयेति विनिनाय साऽपराः ॥१२॥

विदुषि ! अथान वरवर्यशेखरं  
 त्वमथो मृदान मृदुचूर्णमुत्तमे ।  
 न च पारिणेत्रवसनानि सीव्यसि  
 त्वमये स्म संलपति हेति यौवतम् ॥१३॥

अपराऽङ्गरागपरिकर्मकर्मठा  
 गरिमाऽभिमानपदवीमुपेयुषी ।  
 स्मयशैलशृङ्गमपि भूपतेर्मनः—  
 प्रतिसंस्क्रिया पटुतराऽऽरूरोह सा ॥१४॥

पुरगोपुराणि मणिपुञ्जमञ्जुलो—  
 च्छित्तोरणानि नितरां विरेजिरे ।  
 स्वमरीचिवारिभिरिवार्धमादधु—  
 र्यदुपादयोरुपपथं प्रवाहितैः ॥१५॥

नवशुक्तिजस्तबकवन्दनस्रगु—  
 ज्ज्वलहासभासितमुखा गृहा बभुः ।  
 जनताऽङ्गभूषणविभूतिभिः पुरी  
 यदुपागमात्पुलककञ्चुकाञ्चिता ॥१६॥

परिवृत्तचित्रबहुरङ्गभूमिका—  
 गृहभित्तयः किल लसन्ति लासिकाः ।  
 ननु भूर्बभूव मणिकुट्टिमत्विषा  
 षरिवर्तितोपमतनूरनूनया ॥१७॥

प्रतिचत्वरं कृतचतुष्कमण्डना  
 शुचिशुक्तिजैस्तरलितोच्छ्रितध्वजैः ।  
 भुवनाग्रगैरभिनयाय नर्तकी  
 नगरीव रङ्गभुवि सादरैक्षत ॥१८॥

सिचयच्छिदा कृतसुमैरकालजैः

सुपरिष्कृता ततवितानसंहतिः ।

प्रतिसौषमुच्छ्रिततरा मधुश्रिया

किल भूषितं नभ इवान्वभाव्यत ॥१९॥

मुरजस्त्रिधाऽत्र निननाद सादरं

ततमातर्तं घनमरीरणदघनम् ।

शुषिराणि तुङ्गशुषिराणि राणिभिः

प्रतिनादमेदुरतराणि चक्रिरे ॥२०॥

कलगीतिरत्र पिदधे न वल्लकीं

न च साऽपि झर्झरमयं न मर्दलम् ।

न च सोऽपि डिण्डिमडमत्कृतिध्वनिं

न हुडुक्कमेष न स चापि दुन्दुभिम् ॥२१॥

कलमन्द्रतारनिनदप्रतिश्रुता—

परिमूर्च्छितो विविधवाद्यजन्यया ।

जनताऽम्बुधेः कलकलस्य डम्बरो

बधिरीचकार वसुदिमाजश्रुतीः ॥२२॥

अथ श्वातकुम्भशतकुम्भमालिकाः

सचतुष्कवेदिचतुरस्रमण्डले ।

समुदस्य राजतनयां पुरन्ध्रयः

स्नपयांबभूवुरनघां यथाक्रमम् ॥२३॥

कनकाकनत्कुचयुगेन निर्जिताः

कुटपङ्क्तयो दरनतानना हिया ।

अपि लम्बिताः किमुदहारकर्मणि

स्फुटमात्रमञ्जरियुता नु त बभुः ॥२४॥

स्नपिताऽथ सा सितदुकूलवाससा  
 विरराज राजदुहिता वृताऽधिकम् ।  
 शरदःप्रकाशशुचिकाशहासिनी  
 किल पूर्णमेव विमलाम्बरा निशा ॥२५॥

सुदृशः शिरस्यकचपाशमञ्जरी—  
 गलितोदबिन्दव इवाभिषेकजाः ।  
 वदनेन्दुतर्जिततमिस्रमण्डली—  
 रुदिताश्रुपूरपृषता बभासिरे ॥२६॥

मृदुपक्षमलांशुकमृजाभिरुज्ज्वला  
 सुतनेस्तनुर्नु सुषमां दधौतमाम् ।  
 सुकलादशिल्पिधृतशाणतेजना—  
 प्रतियातनेव रुचिरा हिरण्मयी ॥२७॥

अथ वर्णकाञ्चनविसारि सौरभं  
 वपुरेतदीयमधिकं विविद्युते ।  
 रुचिरं हि हेम यदि सौरभोचितं  
 जनवाद एष विदितस्तदाऽभवत् ॥२८॥

क्षितिपात्मजां शुचिवितर्दिकान्तरं  
 विनिवेश्य मण्डनकलासु पण्डिताः ।  
 अतिनिद्रमादरपरा विनिर्ममुः  
 प्रतिकर्मकर्म निखिलाङ्गमङ्गनाः ॥२९॥

इयमुद्धरूपसुभगा प्रसाधिता  
 सुभगाभिराप सुषमां गरीयसीम् ।  
 किमु मूषयेयमनयाऽथ साऽद्युतत्  
 समगाहतैतमिति मन्मनो भ्रमम् ॥३०॥



कृतबन्धुजीवकसरोरुहार्हणं

शशिनं नु चम्पकसुमोपहारितम् ।

सरदच्छदे क्षणमिवैतदाननं

सुमनःशिलातिलकितं जिगाय तम् ॥३१॥

अपराऽभिकस्मरमदान्ध्यतामसी—

तिमिराम्बरप्रचयवाणितन्तुताम् ।

सुदृशो जुगुम्फ मृदुकैश्यमञ्जरी—

मसितागुरुप्रवरधूपधूमिताम् ॥३२॥

वदनाम्बुजं मृदुतनोद्वेगम्बुजे

वरबर्हिबर्हचयगर्हणाः कचाः ।

अधरारुणं तरलिते सुमेचका

व्यतिभात आकृतिनिसर्गसर्गतः ॥३३॥

अथ काऽपि धूपभरधूमगुम्फने

चिकुरभ्रमाद्विदधती सखीजनैः ।

स्मिततर्किता तदलकच्छटोच्चयं

निबन्ध सस्मितमुखी चिराय सा ॥३४॥

इदमीयवेणिरसमेषु बाहिनी—

प्रभवत्तमःपटलनीलिमच्छविः ।

स्फुटमेव नव्यकुसुमैः परिष्कृता

मदनेषुभिः शबलितश्रियं दधौ ॥३५॥

अदसीयभालफलके कचाम्बुद—

क्षणभाविभा कनकपट्टिका व्यभात् ।

वदनामृतद्युतिसुधाऽशनादिव

स्थिरतामशिश्रयदिह श्रिया चिरम् ॥३६॥

बुविशेषकं तदलिके समौक्तिक—  
 भ्रमरालके श्रियमुदञ्चितं दधौ ।  
 त्रिजगज्जयी नु समघत्त सायकं  
 मदनोऽथ मुक्तपदवीजिगीषया ॥३७॥

जनयांबभूव किल तरललाटिका  
 शितिचूर्णकुन्तलकलापवल्लरी ।  
 सुमनःशिलातिलकदीपकाचिषः  
 समुदस्तकज्जलशिखालताभ्रमम् ॥३८॥

सुदृशो दृशौ शितिकनीनिकामणेः  
 किरणैर्गतागतविवर्तवर्तिनः ।  
 समरञ्जि नाञ्जनचयैः सखीकरा—  
 ङ्गनलेखिनीलिखनजैर्नु मन्महे ॥३९॥

किमु यौवनेन नवशिल्पिनाऽमुना  
 धृतसूत्रमञ्जनविलेखरेखया ।  
 समकेति वर्द्धयितुमेधमानया  
 सुदृशो दृशोर्युगमपाङ्गतः परम् ॥४०॥

घनमेचकाञ्जनजरेखयाऽङ्कनं  
 समुपेत्य नीरजयुगस्य तद्दृशौ ।  
 सुषमामवापतुरनङ्गधन्विना  
 विशिखीकृतस्य किणनीलिमस्पृशः ॥४१॥

वरवर्णिनीश्रवणयुग्ममीक्षण—  
 द्वयसञ्जनेन कृतबाधमुच्चकैः ।  
 किमलञ्चकार सरसीरुहद्वयं  
 किल कर्णपूरमिषतो द्विषत्तमम् ॥४२॥

ननु तद्व्रतंसधृतवारिजद्वयं

नवकामुकस्य कमनान्धताभृतः ।

नयनाम्बुजद्वयमिदं नु कर्णयो—

व्यंगलत्तमां किमिव कस्यचिद् ध्रुवम् ॥४३॥

कुसुमायुधः किल तदीयकर्णिका—

मणिदीप्तिर्किशुकसुमात्तकार्मुकः ।

कृततद्विलोचनसरोजसायको

वसुदेवमेव हि शरव्यमैक्षत ॥४४॥

सुदतीमुखं कनकरत्नकुण्डले

श्रुतिवल्लिपाशयुगलेन सागसी ।

शशिमण्डले इव ननाह तत्तुला—

द्वयवादिनी किमु विभुत्वशक्तितः ॥४५॥

सुमुखीमुखामृतकरस्य कुण्डल—

द्वयमध्यगस्य यदुमन्मथोद्भवे ।

न्यपतत्तरां दुरधुराभिधो ध्रुवं

किल योग एष विषमेषु भूतिदः ॥४६॥

मधुराधरे मृदुतनोरलक्ष्मक—

द्युतिदीप्तये विनिहितं वयस्यया ।

मदनं विधूय मधु तत्सलालसं

विललास वस्तुमिह किं सुधानिधौ ॥४७॥

किल वल्लकी मधुरगीस्त्रिरेखया

सुतनोर्बभूव मृदुकण्ठकन्दली ।

सितसप्तशुभितजसरानुपेत्य सा

परिवादिनीव विरराज मञ्जुला ॥ ४८ ॥

करिदन्तजेन खलु तदभुजद्वयी  
 नवकङ्कणेन विसिनीं जहास या ।  
 वदनप्रभाऽपहृतसारचन्द्रमः  
 परिपूर्णमण्डलमिवानुकुर्वता ॥ ४९ ॥

नवयावकद्रवजरागरञ्जना—  
 दरुणौ तदीयचरणौ रराजतुः ।  
 उपगूहनात्तरुणपङ्कजे उष—  
 स्यरुणद्युतेरिव चिरेण जाग्रती ॥ ५० ॥

कृतमन्तुरेष मदनानलः पुरा  
 प्रसमीक्ष्य भाविदयितं मृगीदृशः ।  
 स सरागभूयमभितः पदद्वये  
 भजति स्म यावमिषतः किमु स्फुटम् ॥ ५१ ॥

पदहंसकौ नु किमु राजहंसकौ  
 सविलासमन्थरगतानि शिक्षितुम् ।  
 किल मत्तवारणगतेरुपासना—  
 मिव चक्रतुर्मधुरझङ्कतिध्वनी ॥ ५२ ॥

घनचन्द्रचन्दनजपङ्कपिच्छले  
 शुशुभे मणिप्रथितहारमञ्जरी ।  
 किरणच्छलात्स्वलितचिहिता जग—  
 द्युवचेतसां सुवदनास्तनातटे ॥ ५३ ॥

किमु भूषणैः किल निसर्गसुन्दरेऽ—  
 पधनोत्करे वरतनोरलङ्कृतम् ।  
 शितिमञ्जिमा ननु कनीनिकामणे—  
 रनुपाधि सिद्ध इह चेत्किमञ्जनैः ॥ ५४ ॥

सुतनोरथोत्तरतराऽधिभूषण—

द्युतिराद्यभूषणरुचीरबाधत ।

स्फुटजातिसंविदमिवार्थसूत्रितां

सुविशेषसंविदसमानलक्षणा ॥ ५५ ॥

वियति प्रसन्नमिव चन्द्रमण्डलं

निजमाननं मुकुरमण्डले वधूः ।

विनिभालयन्त्यतनुवारिदे बत

ललितभ्रमं प्रतिमिता बभार सा ॥५६॥

मणिमण्डनद्युतिपलाशमालिका

भ्रमरङ्गसङ्गतशिलीमुखा बभौ ।

सुतनोस्तनुः किमवनाय धन्विना

कुसुमायुधेन धनुषां शतैर्वृता ॥५७॥

व्रततिः सुमैः सुरधुनीव वीचिभि—

नलिनी षडङ्घ्रिभिरिव स्तुतिगुणैः ।

नृपता नयैर्नु विनयैर्विनेयता

विरराज भूषणगणैः सधर्मिणी ॥५८॥

सपदि प्रसाधनकलासु कोविदै—

रनुजीविभिर्यदुपतेः प्रसाधनम् ।

समपादि माङ्गलिकमुज्ज्वलोचित—

प्रवितायमानपरिकर्मनिर्मितम् ॥५९॥

अथ कङ्कतस्य मृजया प्रसाधिता—

ञ्जनमेचका कचकलापवल्लरी ।

शिखिबर्हकान्तिचयचौरिकाचणा

किमवन्धि तैरुचितविद्भिरस्य सा ॥६०॥

अजुरायता स्मरशरासनस्य सा

ननु शिञ्जिनी नृपशिरोजमञ्जरी ।

व्यलसत्तरां सुमललामकैरलं

किमजिह्वगैर्नु परितः परिष्कृता ॥६१॥

नवहेमरत्नखचितेन मौलिना

घृणिपुञ्जमञ्जुतरमञ्जरिद्युता ।

दिविषदद्रुमः किमु बभौ स जङ्गमः

कमनोत्सवे सुरभिणा विनिद्रितः ॥६२॥

अलिके बभौ कनकवीरपट्टिका—

मिषतस्तदास्यनलिनं जिताम्बुजम् ।

द्युतिपुञ्जपिञ्जरपरागमण्डिता—

तपवारणं नृपतिलक्षणं दधत् ॥६३॥

नवकुङ्कुमद्रवविमिश्रचन्दन—

स्फुटचित्रकं तदलिकं सभाजनैः ।

उदयाद्रिकूटशिखरोदितं विधो—

रिव सामिबिम्बमुदनीयत स्फुटम् ॥६४॥

यदुनन्दनस्य वदनेन बाधितौ

किमु भास्करामृतकरौ नु कुण्डले ।

तदुपासनां विदधतुः पराभवं

किल बिभ्रतौ ललितदोलनच्छलात् ॥६५॥

यदुगण्डमण्डलयुगानुबिम्बिता

लसति स्म या कनककुण्डलद्वयी ।

समभाव्यत द्विगुणवक्रचङ्क्रमः

किल मान्मथो रथ इति ध्रवं तथा ॥६६॥

उपकण्ठतारतरहारमञ्जरी

नतकन्धरस्य चिबुकांशचुम्बिनी ।

नृपतेरभादिव मुखेन्दुचन्द्रिकाऽ—

शृतबिन्दुवृन्दकरतुन्दिलापगा ॥६७॥

भुजवल्लरी स्तम्भकिताङ्गुलीनखै—

र्ननु हैममुद्रिकतया सपल्लवा ।

वलयालवालकलिता फलेग्रहि—

जगदर्थिनां वितरणैर्यदोर्बमौ ॥६८॥

सितहीरवीरवलयाऽस्य दोर्द्वयी

किल तत्प्रतापयशःसीकरोत्करैः ।

किरति स्म मण्डनमणिच्छविच्छलो—

च्छलदच्छवारिधरबिन्दुवृन्दजैः ॥६९॥

निजरत्नभूषणमणिप्रभासुर—

द्युतिचक्रवालनिचयेऽनुचुम्बितम् ।

वपुषोऽनुबिम्बमवलोक्य लोकपो

निचकार चारुमुकुरग्रहाग्रहम् ॥७०॥

अपि भूषणानि मणिपुञ्जमञ्जुलो—

न्मिषदम्बकैर्युगपदेव सुन्दरम् ।

वसुदेवरूपमपिबँस्तदा तदा—

तनलोकलोचनमुदः किमु स्तुमः ॥७१॥

कृतसर्ववैरिगणशार्वरक्षितिः

क्षितिमण्डलप्रसृतकीर्तिदीधितिः ।

स च जन्ययानमुदितः समारुहत्

किल सप्तसप्तिरिव सप्तित्वाहनम् ॥७२॥

तमथो पुरस्य जगतीपुरन्दरं  
 प्रमदागणः क्षणनिरीक्षणोन्मनाः ।  
 स यियासुराशु विहितप्रसाधनः  
 समलञ्चकार चतुरश्रतुष्पथम् ॥७३॥

अथ काऽपि कौतुकविलोकनाकुला  
 पवमानसामिविधुतस्तनाम्बरा ।  
 पुरतश्चलन्त्यकृतमङ्गलोचिता  
 मुदकुम्भसम्भृतिमिवाशु शौरये ॥७४॥

अपराऽऽलिमीक्षणपरां यदूद्ग्रहं  
 किमुदस्तहस्तलतिकाङ्कदेशतः ।  
 किल दर्शयन्त्यनवधानतस्त्रुटत्—  
 तरहारमौक्तिककणैरवर्द्धयत् ॥७५॥

पुरयौवतस्तननिपास्यपङ्कज—  
 स्मितसूनसन्नखरदर्पणावली ।  
 किल शस्तवस्तुततिरास सैव त—  
 दम्बिकाय भूमघवतो यियासतः ॥७६॥

स च पौरयौवतविनिद्रवारिज—  
 द्युतिचुम्बिनेत्रनिकुरम्बजस्रजा ।  
 परिचुम्बितो यदुरहो दिदृक्षुभिः  
 किमु भद्रकुम्भ इव जङ्गमः पपे ॥७७॥

परया रयान्निजकराम्बुजस्थितं  
 नवनागवल्लिदलमाददानया ।  
 लपने स्वकेलिकमलं निचिक्षिपे  
 वदनप्रभारिपुधियेव पश्यया ॥७८॥



अपराऽयणाग्रवलभीपरम्परा

यदुदर्शनोत्सवविनिद्रलोचना ।

सुदती सती व्यतियती सुराङ्गना—

अमविभ्रमं स्म दधते रसोर्ध्वगा ॥७९॥

जनमेलके यदुपवीक्षणक्षण—

प्रहितेक्षणेऽप्युपपति नितम्बिनी ।

अपरा समाश्लिषदथान्तरान्तराऽऽ—

नकद्न्दुभीक्षणमहो मुहुर्मुहुः ॥८०॥

भुवनाग्रचुम्बिकमनीयकामिनी—

मुखचिम्बडम्बरितमम्बरं दिवा ।

शतचन्द्रसान्द्रमिव तददिदृक्षया

समलक्ष्यताखिलजनैर्नु सङ्गतैः ॥८१॥

नवहर्म्यजालकमुखानि सुन्दरी—

क्षणसुन्दराणि मधुसारसौरभैः ।

कलितानि तानि दधिरे नु तन्महे

किल मन्महे शतदलाम्बुजश्रियम् ॥८२॥

विधिना विधानविहितैकतानता—

परिपाकिमाभ्यसनकौशलेन किम् ।

मिथुनं तदेतदनयोः परस्पर—

व्यतिषङ्गिणोर्नु निरमायि निर्भरम् ॥८३॥

किमु काम एष कनकातपःफल—

स्फुटशिल्पिकल्पित इयर्ति मूर्तिमान् ।

यदुनन्दनः किमुत नन्दनद्रुमो

मनुजीभवन्ननु भवादवातरत् ॥८४॥

अनया सखि ! खितमया महौचिती—  
 चतुरस्रविच्चतुरया धनाधिपः ।  
 सुमना अपि स्फुटमकारि दुर्मना  
 यदुपस्वरूपमनुभूयमानया ॥८५॥

शुभयौवताभ्युदयसार्वभौमता—  
 पदवीमुपेयुषितरा कुतस्तराम् ।  
 उपवीजितेयमयि यादवेक्षणा—  
 अलचामरैः सुभगताऽऽत्पत्रिता ॥८६॥

इति बाहवाहनगतं सुवासिनी—  
 जनलाजमोक्षणविधानवद्धितम् ।  
 सुभगं निरीक्ष्य पुटभेदनाङ्गनाः  
 पथि संकथां समुदिता विनिर्ममुः ॥८७॥  
 ॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

काभिश्चित्प्रसृतस्वहृक्प्रसृतिभिर्भूपस्वरूपामृतं  
 पीतं काभिरदःकिरीटमणितासाहस्रनेत्रभ्रमात् ।  
 सुत्रामेति किमिन्दुमण्डलमदोवक्त्रप्रभामण्डलं  
 संश्लिष्टः स्वधिया पराभिरभितो नेत्रे निमील्य प्रभुः ॥८८॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेय—  
 पण्डितेशश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरे महाकाव्ये  
 वरालङ्करणं नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

॥ अष्टमः सर्गः ॥

राजन्यकैस्तरलतुङ्गतुरङ्गधारा—

पारीणकेलिकलितैः परितः परीतः ।

आकल्पकल्पितमहर्द्धिपरार्द्ध्यशोभैः

श्वाशुर्यमन्दिरमथो यदुपः प्रतस्थे ॥१॥

वाराङ्गनाकमलनालभृणालमञ्जु—

दोर्वल्लिचारिचलचामरवीज्यमानः ।

आशीःप्रवादपटुमङ्गलमाददानो

राजा रराज पुरराजपथे जिहानः ॥२॥

नासीरचारिधरणीधवमौलिमाला—

रत्नद्युतिद्विगुणदीपकदीप्तिचक्रैः ।

शौरेश्चमूचतुरवीतिखुरोत्थधूलि—

ध्वान्तं शशाम निशि जन्यजनप्रयाणे ॥३॥

पीठालयप्रभुरुदीक्ष्य करग्रहस्य

नेदिष्टमंशकमथ प्रजिघाय दूतम् ।

आहूतये सकलराजकमण्डलस्य

द्राक्स स्वसैनिकवृतोऽत्र समुच्चिकाय ॥४॥

चीनांशुकप्रचयकल्पनकल्पितेभ—

कीशर्क्षकेसरिलतासुमशालवृन्दैः ।

तद्वाहिनीबहुलहास्तिककर्णताल—

वातोद्धृतैरपि वियद्विपिनायते स्म ॥५॥

वातप्रवेल्लितसुतोरणभङ्गरभ्र—

व्याजादभान्नु कनकेरितशम्भलीपूः ।

याऽऽमन्त्रणाय यदुपस्य तदेव तस्याः

स स्वैर्बलैर्बलजभूमिमुपाजगाम ॥६॥

साद्धोरुकैरिव चलैः कदलीदलैस्तै—  
 द्वास्तत्सखीरचितमङ्गलमण्डनश्रीः ।  
 अभ्राजतास्य कृतरिष्टसुखानुयोगा  
 तत्तूरतारनिनदैः सितहारहासा ॥७॥

मन्नीतिचञ्चुनिजनायकशङ्किनोऽत्र  
 सङ्गादनुद्धततरध्वजिनीद्वयस्य ।  
 आश्वीयहास्तिपकहास्तिकसादिपद्ग—  
 ध्वानस्ततान सकलाम्बरकम्बुचुम्बी ॥८॥

स्वान्सन्निवेश्य बहिरेतु यदुं तमित्या—  
 स्यातं पुरोऽभ्यगमदूर्ध्वपथं नरेन्द्रः ।  
 सद्योऽवतीर्णमथ सौधमुखेऽश्वयानात्  
 प्रावेशयत्कृतसपर्यमयं विलोक्य ॥९॥

भूनायकस्तमथ नायकमङ्गजाया  
 भद्रासनोत्थितचरः सुविसारिदोभ्याम् ।  
 शिःश्लेष मूधरमिवाध्वगतं प्रवाहो  
 गाङ्गो द्विधाकृततनुर्हिमवत्प्रसूतः ॥१०॥

स स्वाङ्गजामथ यथाविधि राजवंश्य—  
 भूकश्यपाय विततारतरां क्षितिक्षित् ।  
 गौरीं गिरीन्द्र इव वा गिरिशाय पद्म—  
 नाभाय पद्मनिलयां किल दुग्धसिन्धुः ॥११॥

शौरिर्विधाय मधुपर्कजसग्धिमेत—  
 न्माध्वीकमुग्धमधुराधरलोभलोलः ।  
 स्वाराज्यमेव बुभुजे स भुजङ्गराज—  
 राजदभ्रजो भ्रुवि तथा जयवाहिनीशः ॥१२॥

शौरैः करः परपरासनबद्धकक्षो  
 जन्याः शयः किल कुशेशयभूतिदस्युः ।  
 राजन्वतीति विषये कुशबन्धनार्हा—  
 वेतौ व्यधान्नयचणो ननु तत्पुरोधाः ॥१३॥

जायाकरं यदुकरोपरिसन्निविष्टं  
 संपश्यमानपुरुषायितमस्मयन्त ।  
 पश्याः पुरन्ध्रविसरा अपि तद्वयस्याः  
 सम्भाव्य तत्र तमुदर्कवितर्कविज्ञाः ॥१४॥

भूपः प्रसन्नधनदार्षितदिव्यहार—  
 मुदगच्छदच्छतरलच्छविचाकचिक्यम् ।  
 सच्चन्द्रहासमसिमुद्धतवैरिवार—  
 निर्वापणप्रवणमुत्सृजति स्म तस्मै ॥१५॥

कर्णारथानथ सपुष्परथानदभ्र—  
 शृङ्गीसुवर्णमणिमञ्जुलपुञ्जपूर्णान् ।  
 उच्चैर्निगालकलितान्जवनाँस्तुरङ्गान्  
 द्राक्कुकुदः शतमदाद्यदवे महेभान् ॥१६॥

माणिक्यरत्नमयमुद्यदखण्डचण्ड—  
 रुमण्डलप्रतिममुद्धपतदग्रहं सः ।  
 हैमीं स्थगीं वरमणीरमणीयदीप्तं  
 प्रादात्तथा श्वशुरराद्दुहितुर्वराय ॥१७॥

तत्राशुशुक्षणिमथो परितः परीत्य  
 तज्जम्पतिद्वयमतीव पुषोष लक्ष्मीम् ।  
 बिम्बं सुमेरुपरिवर्तिसुधाकरस्य  
 श्विद्रोहिणीपरिवृतं किल शारदीनम् ॥१८॥

बाला दुकूलसिचयाञ्चलबद्धवासाः

शौरिर्व्यधायि निपुणेन पुरोहितेन ।

नश्यन्निवैष किल कामशरप्रचारा—

सारादविश्रसन्तापरिशङ्कितेन ॥१९॥

तद्गाढरागरचनामिव पुष्पधन्वा

तद्दम्पतिद्वयपराञ्चलसङ्गनेन ।

प्रादुश्चकार यदि वा स्वयमुज्जिहीते

ग्रन्थिस्तयोः प्रणयजोऽथ बहिः स्म साक्षात् ॥२०॥

पत्याऽभ्यधायि दयितागुह्लिसूचनात्त्व—

मौस्तानपादिमुनिधिष्ण्यमुदस्य पश्य ।

दृष्टिं निजां ध्रुवमयि ! ध्रुवमस्तु तत्ते

सौभाग्यमेतदनिमेषनिभालनेन ॥२१॥

साऽरुन्धतीमथ वरेण वधूरदशि

त्वं तामणीयसितरां नु मणिं सतीषु ।

साक्षान्निशामय निशाकरसुन्दरास्येऽ—

मुष्याः सतीव्रतदृढत्वनिमित्तमीक्षा ॥२२॥

भास्वत्तराणि किमु भानि नभोन्तराले

किं होमधूमलतिकाकुसुमानि लाजाः ।

तस्याः करादिव हुताशनदैवतास्ये

शुक्ला रदाः शुशुभिरे मुहुरापतन्तः ॥२३॥

तत्रोल्लसन्निगमधूमजराजिरस्याः

सा गण्डयोर्धृगमदश्रियमाततान ।

अक्ष्णोर्घनाञ्जनविभां श्रवसोर्नु कर्ण—

पूरायितालमलिकेऽलकवल्लिलीलाम् ॥२४॥

व्रीडाभरोपनतघर्मजवारि जाया—

पत्योः करे वितरणास्त्रुभिराप लोपम् ।

आनन्दजाश्रुभरनिर्झरवारिधाराऽ—

पालोपि धूमशितिवल्लिजवेल्लितेन ॥२५॥

सददक्षिणां वितरति स्म स दक्षिणीयान्

भूपो वनीपकमनीषितकल्पशाखी ।

भूकश्यपः कृतसमग्रविधिस्तदानी—

मागात्स कौतुकगृहं सुपुरोहितेन ॥२६॥

तत्सन्न पद्ममिव जालदलं पुरन्धि—

लोलेक्षणभ्रमरराजिविराजिशोभम् ।

सद्बालवायजनिबद्धतलाम्बुमूषा

हेमस्फुरत्करपरागमराजत स्म ॥२७॥

ब्रन्देन तेन निरशेषि हिया नतेन

नो बन्धुता समुदयस्य पुरोऽशनाया ।

नादर्शि दीर्घमथ तत्र मिथो यथाव—

न्निकामकेलिशयने अहमप्यशायि ॥२८॥

सोत्प्रासमस्य समितौ यदुनन्दनस्य

श्यालः सुकेलिवचनैर्हसति स्म जन्यान् ।

सग्धिं विदग्धपुरुषायितवारमुस्या—

वृन्दैरकारयदमीषु च सापलापम् ॥२९॥

रुच्यं हि वाच्यमिह वः खलु दास्यति स्व—

रागादियं बहुकरी मदनालयादि ।

एषा वराङ्गरुचिरा कनका सगर्भान्

संश्लिष्य काममिति वाचमुवाच जन्यान् ॥३०॥

यत्काममोदनमथो कमनीयमिष्टं

श्चिस्सर्वतो मुखमतीवपिपासुभिर्वा ।

अस्या जनीसहजपक्षजनः स्म वाक्यं

सश्लेषमाह यदुनन्दनजन्यलोकैः ॥३१॥

यूना पराऽनु लपिता स्त्रितमाऽसि मे त्व—

मेषाऽथ साऽस्य निजमौक्तिकदाम कण्ठे ।

क्षिप्त्वा चकर्ष तमिहैहि पशुक्रियाव—

न्नुददानमेव विहितं त इति ब्रुवाणा ॥३२॥

साचीकृतस्वधमनिर्युवती युवान—

मन्यं निरैक्षत निजाक्षिविकूणितेन ।

सा रागपश्यममुना हृदया विधा स्म

चित्रीयते न किमसम्मुखवेध्यवेधात् ॥३३॥

प्रासिस्विदद्व्यजनवेत्तितबाहुवस्त्रेः

संवीजनैर्वरतनोर्वदनं विलोक्य ।

उद्ग्रीव एव घनधर्ममिषादपश्यत्

कश्चिद्विपश्चिदनिमेषदृशा वयःस्थः ॥३४॥

रागार्द्रसान्द्रतरदृष्टिपथेऽथ यूनि

तन्व्याः स्मितं कृतकटाक्षनिरीक्षितं वा ।

हीनम्रताचतुरिमा वचनस्य तस्याः

स्वीकारकारणमभूत्प्रतिभूरिवैतत् ॥३५॥

कश्चित्परां सपुलकः स्मरधूर्णमान—

दृष्टिस्खलद्गतिविलासवशां नु पश्यन् ।

कामेषु भीलुक इवाशु विवेश पाद्यं

नीत्वाऽऽगतां चरणयोर्नखबिम्बितोऽस्याः ॥३६॥



अन्यः स्फुटस्फटिकचत्वरसंस्थिताया—

स्तन्व्या वराङ्गमनुबिम्बितमीक्षमाणः ।

सामाजिकेषु नयनाञ्चलसूचनेन

सांहासिनं स्फुटमचीकरदच्छहासः ॥३७॥

काचिन्निरीक्ष्य तरुणं तरुणी निजालि—

मालिङ्ग्य गाढभुजबन्धनमण्डलेन ।

आचष्ट सम्मुखमभीककलाभृतं तं

सा स्पृष्टकस्फुटविचेष्टितमेव रागात् ॥३८॥

तत्तत्कटाक्षतरलेक्षणभावहाव—

हेलाविलासमृदुवाग्भवभङ्गिरङ्गैः ।

यूनोमिथो मुदिह सा समभून्न यत्र

सञ्चारिका परिचयप्रणयप्रचारः ॥३९॥

बद्धाञ्जलिः खलु खलोऽथ पिपासुरम्भः

क्षिप्तं कयाऽपि पिबति स्म न चास्यमस्याः ।

तत्तत्प्रतिप्रतिमितं प्रसमीक्ष्य चुम्ब--

न्नाह स्म चुङ्कृतिरवेण तदापित्तिभिक्षाम् ॥४०॥

ते वारयात्रिकजना ललनाविलास—

स्यावच्छटाः शुचिरसप्रभवा निपीय ।

आवेशनं रतिपतेर्नलतन्तुनद्ध—

वीतंसबद्धनभसङ्गमतामिवापुः ॥४१॥

वैदूर्यवज्रखचितेषु हिरण्मयेषु

पात्रेष्वभित्तकणमच्छमभोजि भक्तम् ।

जन्यैः सबाष्पमथ मार्दवताधुरीण—

सन्माधुरीपरिणतं परिपाकिमं तैः ॥४२॥

प्राज्याज्यभिन्नपरमान्नमदभ्रशुभ्र—

खण्डप्रकाण्डरसवत्तरमस्वदन्त ।

ते तेमनं जतुकजीरकचुककृष्णैः

सार्पिष्कमीषदविकालवणेन सिद्धम् ॥४३॥

तत्रावसेकिमकदम्बकमिन्दुबिम्बं

मानं सुधाम्बुधिधियेव विभज्य मूर्तीः ।

जक्षुस्तरां त इति दाधिकमाद्रिकादि

सद्वेषवारपरिपूरितगर्भभागम् ॥४४॥

अदश्वितं धवलतण्डुलपिष्टसिद्धं

सोपस्करं समलिहन्नथ ते प्रलेहम् ।

आदन्परेऽपि दकलावणिकानि राजे—

कायोगतः कृतचमत्कृतचुम्बितानि ॥४५॥

मौदगीं परास्य वितुषां परिवेश्य दालि—

मूर्ध्वामिमां चतुर आह तदिङ्गितज्ञः ।

रुच्योदनेन घटयेत्युदिता विहस्य

सा तं ततः स्म परिवेशयति स्वरागात् ॥४६॥

खण्डं परो घृतवरस्य रदाग्रवर्ति—

कृत्वा पुरःस्थसुमुखीं कितवः कटाक्षैः ।

संसूचयत्यधरदंशमिर्यं स्म बिम्ब—

शाकं हियाऽभ्युपगमाय दधावमत्रे ॥४७॥

काचिन्नमीलितदृशा रजनीं विनिद्र—

दृष्ट्या पराऽपि समकेतयदित्यहश्च ।

अन्याऽधरस्थितकरा कमितुः प्रदोष—

मानन्दसान्द्रहृदसौ बुभुजेऽथ भोज्यम् ॥४८॥

कश्चित्स्वभाजनगतामपिबद्रसालां  
 नो रामणीयकमुखानुकृतां रमण्याः ।  
 यभृशुचुम्ब स च हीणतरा पराऽपि  
 चेलाञ्चलेन चतुरा लपनं जुगोप ॥४९॥

नाकृतमेव मम वेद किमिज्जितज्ञा  
 नादृत्य मां गतवतीयमिति प्रतर्क्य ।  
 स्तब्धस्य तस्य विनिवृत्य स कास्वकाक्ष—  
 काण्डैर्ददार हृदि हार्दहलाहलात्कैः ॥५०॥

सम्भाविनीति कियदुच्चकुचेयमस्मिन्  
 व्याहृत्य तस्थुषि पटावृतहृद्वरोरुः ।  
 श्रुत्वाऽथ सोत्तरयति स्म करद्वयस्थ—  
 भृङ्गारधारणमिषेण तदग्रतोऽपि ॥५१॥

वृत्तं निधाय निजभोजनभाजनेऽसौ  
 सन्मोदकद्वयमतीवपुरःस्थितायाः ।  
 सन्धाय वक्षसि दृशं करमर्दनानि  
 चक्रे त्रपानतमुखी सुमुखी बभूव ॥५२॥

बाले ! पिपासुरहमित्युदिता खलेना—  
 हृतेन साऽपि कनकालुकयाऽथ पाथः ।  
 यावद्वरस्मितविकस्वरसृक्कणिः स्ना—  
 क्सरुयाऽनयन्निव वृते हसितः स तावत् ॥५३॥

प्रागर्थयन्निकृत एष विलासवत्या  
 तत्सम्मुखं विटपतिः स भुजिक्रियायाम् ।  
 क्षिप्त्वाऽङ्गुलीः स्ववदने ननु मार्जिताव—  
 लेहापदेशत इयं परितोऽनुनीता ॥५४॥

आरालिकैः पचनपेषणकर्तनाद्यैः  
 संस्कृत्य तादृशमिदं निरमायि भोज्यम् ।  
 नानारसं सुरभि यत्समयातिवर्ति  
 सभ्यैरवर्णि परिहासरसातिशायि ॥५५॥

रागार्द्रसान्द्रनयनश्रमिभङ्गितान्ध्य—  
 बन्ध्यावलोकनपरं चतुरं विभाव्य ।  
 सा पुत्रिकां मृतसिताघटितां विहस्य  
 चिक्षेप भाजन इमां भज वादिनीति ॥५६॥

पक्वान्नगर्भगतकण्टकशूककीट—  
 प्रादुःकृतिप्रहसनैः मुहिताः सदस्याः ।  
 सौरस्यसौष्ठवपटिष्ठमपीषदन्नं  
 ते भुञ्जते स्म कवलं प्रतिसन्दिहानाः ॥५७॥

राजार्हधूपघनसारसुवासितेन  
 शीतानिलेन परिशीलितगर्भमग्भः ।  
 आस्वाद्य जीवनमहो ! विधिना व्यधायि  
 तथ्यं हि तुष्टवुरितीदमिदं पिबास्ते ॥५८॥

स्त्यानीकृता किमु सुधाऽथ सिता सिता वा  
 चान्द्रैर्दलैर्हिमघना किल चन्द्रकान्तिः ।  
 आकण्ठमेव दधिबाष्कयिणं त आशु  
 प्राशुस्तरां सुमधुरं तदिति स्तुवन्तः ॥५९॥

जन्यैरभोजि नवमण्डकचीनवासाः  
 सद्वृत्तमोदककुचोज्ज्वलकूरहारा ।  
 क्षीरावसेकिममुखी घृतचारुनेत्रा  
 जग्धिक्रिया युवतिरच्छपयस्यहास्या ॥६०॥

षड्भीरसैरिह न पल्लविकास्तथाऽऽपुः  
 सौहित्यमुत्तमतमेन यथारसेन ।  
 स्त्रैणप्रयुक्तकिलिकिञ्चितसम्भवेन  
 ते सप्तमेन परिहासविलासभाजा ॥६१॥

यः प्रार्थनाचटुशतानि पुरा प्रकुर्व—  
 न्नत्याकृतः सुभगमान्यपि मानवत्या ।  
 प्रक्षालनस्य निमतोऽञ्जलिमाससञ्ज  
 क्षीरक्षिपाभिरनया स युवाऽन्वकम्पि ॥६२॥

श्यालप्रयुक्तनवनागलतादलानि  
 तेभ्योऽर्पितानि पटमण्डपवासितेभ्यः ।  
 ते ज्योतिरिङ्गणयुतानि च तानि दृष्ट्वाऽ—  
 ङ्गारभ्रमेण विजहुर्दरदष्टपूगाः ॥६३॥

सत्येतराणि पृथगप्युपदीकृतानि  
 रत्नानि लान्तु गदिता इति कूकुदेन ।  
 ते तेष्वथैक इह कूटमणिग्रहीता  
 पश्यैरहस्यत स इत्यह हास्यदाक्ष्यम् ॥६४॥

यद्यौतकादिनिखिलं मिथुनोचितं त—  
 त्प्रादान्नुपः सकलकृत्यविदां वरेण्यः ।  
 दाक्षिण्यवानुचितदक्षिणयाऽर्थिनोऽपि  
 प्रामोदयद्विदितबन्धभिगीतकीर्तिः ॥६५॥

शौरिस्ततस्त्रिचतुराणि दिनानि तत्रो—  
 षित्वा स्वयं श्वशुरयोरुपरुन्धनेन ।  
 सानन्दमिन्दुकुरु विन्दनिभेरथेऽसा—  
 वारुह्य बान्धववृतोऽथ पुरः प्रतस्थे ॥६६॥

आरोहयत्स कनकां स्वयमत्र चान्य—  
 संश्लेषशङ्कितमना विरहेण पित्रोः ।  
 अस्त्राकुलां सपुलकां प्रियसङ्गमेन  
 द्वैरथ्यरागमनुरागवतीं दधानाम् ॥६७॥

पत्युः प्रगाढपरिरम्भनिपीडितेन  
 खिद्यत्तनुः किल भविष्यति कोमलाङ्गी ।  
 मत्वा वधूं वरयितारमिवात्मयोनिः  
 श्विद्रोमहर्षमिषतः कठिनीचकार ॥६८॥

आबालभावपरिशीलनताविनीत—  
 स्वापत्यवत्सलतया स्पृहणीयशीलाम् ।  
 तां च प्रहित्य पितरावनुजो वियोग—  
 दूनान्तराः कियदहानि भृशं विषेदुः ॥६९॥

हरिश्चन्द्रः शौरिं निजसुभटसेनापरिकरः  
 कियद्दूरं स्मेरश्चटुचटुलसंलापचतुरः ।  
 अनुव्रज्य प्राज्यप्रथितमहिमानं स्वदुहितुः  
 पतिं व्यावर्तिष्ठ प्रणयनतमौलिर्निजपुरीम् ॥७०॥

अये ! सर्वस्वं ते नयननलिनोऽस्मिन्समिहिरो  
 मनस्तुष्टेः कर्ता विदुषि ! यदुभर्ता किमपरम् ।  
 परं ब्रह्मेवाऽयं श्रवणमननध्यानपरया  
 समाराध्यः साक्षादहमिह न कोऽप्यस्मि दुहितः ॥७१॥

## पद्मसुन्दरसुखरिविरचित

तनूज्जन्मानं स्वामिति गदितशिष्टिश्चदुगिरा

समाश्रास्य स्वान्तं स्वमथ कनकायाः परिवृढः ।

रुदत्या बाष्पाग्भः स्नपितलपनः स्वं पुरमगात्

प्रियालापैः प्रेयान्प्रियसहचरी सान्त्वनमधात् ॥७२॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेय—

पण्डितेशश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरे महाकाव्ये वसुदेव-

परिणयो नामाष्टमः सर्गः ॥८॥ ॥छ॥

॥ नवमः सर्गः ॥

प्रान्तरेऽथ शुचिपुष्परथस्थौ  
दम्पती दधतुरदभुतशोभाम् ।  
प्रावृषेण्यशरदभ्रकदम्बे  
शक्रचापतडिताविव किं तौ ॥१॥

आननश्रियमपीयत दृग्भ्यां  
नासया श्वसनसौरभमस्याः ।  
अङ्गजैः सपुलकैर्नु तदङ्गा—  
वच्छटालवणिमानमजस्रम् ॥२॥

विप्रकृष्टचलचकतुरङ्गा—  
स्कन्दितोद्धतरजःकणराजी ।  
निःपतन्त्यरुचदस्य शरीरे  
चूर्णमुष्टिरिव दिग्वनितानाम् ॥३॥

सान्त्वनैर्वरयितुर्वत तस्या  
मातृजो विरहवाडववह्निः ।  
रुच्यरागजलधौ हृदि शोक—  
ज्वालजालजटिलो न शशाम ॥४॥

आधिवल्लिलवनाय सुदत्याः  
शौरिरप्युपचचार चट्टकतैः ।  
किं न चन्द्रमृगनाभिसगर्भं  
दृक्त्रिभागमनुकम्प्य ददासि ॥५॥

सारसस्य मिथुनं सरसस्तत्  
सारसाक्षि ! ननु पश्य तटस्थम् ।  
एकपद्मविसभुक्तिमिषेण  
द्वन्द्वरागमिव वक्ति भवत्याः ॥६॥



मन्यते विधुमरालमृणालं

भानि पुष्करकणानलिमालाम् ।

तामसीं स्वदयिताविरहातः

पश्य पद्मबिसमत्ति न कोकः ॥७॥

शर्वरीविरहभीरुरयं ते

निस्तलस्तनजविभ्रमशोभी ।

कान्तयाऽऽतपमपि त्रिदशद्रु-

च्छायमेव मनुते ननु तेन ॥८॥

पद्मिने निजकरेण करेणुं

सल्लकीकिशलयानि ददानाम् ।

वीक्ष्य भामिनि ! निभालनभङ्गी-

विभ्रमैरनुगृहाण निजैर्मां ॥९॥

किन्नरः स्वदयिताऽधरबिम्बं

चुम्बति स्वललनापरिरम्भम् ।

त्वं निशामय मयुः कुरुतेऽसौ

तौ मिथो रतिमथ स्पृहयन्तौ ॥१०॥

कृष्णसार इह कृष्णशिरस्ये

स्वाननस्थयवसेन कुरङ्गया ।

सग्धमिच्छति तदीयविषाण-

प्रेमघर्षणनिमीलितदृष्टया ॥११॥

कुन्दसुन्दरदरस्मितमुग्धे !

पश्य मञ्जुमकरन्दकदम्बम् ।

एकतामरसपात्रनिलीनं

साऽलिनी यदलिना पिबति स्म ॥१२॥

चक्रचंक्रमसमुद्धतधूली—

डम्बराम्बुधरदुर्दिनबुद्धया ।

मुक्तकेक इह कामिनि । केकी

नर्ततीति दयिताऽनुगतोऽयम् ॥१३॥

चित्रमत्र सरसीरुहरेणु—

वात्यया विततपीतपताकः ।

रेणुदुर्दिनघने घनमार्गे

चञ्चलाविलसितानि विधत्ते ॥१४॥

नवनलिनपरागराजिरुच्चैः

सुरुचिरसौरभसम्पदं ततान ।

नवनलिनपरागराजिरुच्चैः

सुरुचिरसौ रभसं पदं ततान ॥१५॥

॥अर्द्धयमकम्॥

करभोरु ! भाति सरसि स्फुटपद्मं

विततालिकेलिकमरालमरालम् ।

अथ भूरिभङ्गुरिततुङ्गतरङ्गै—

विततालिकेलिकमरालमरालम् ॥१६॥

कलितकोकनदं दरदन्तुरं

सुदति ! पद्मसरः सरसीरुहैः ।

कलितकोकनदं दरदन्तुरं

पुलिनमस्य विहङ्गमपुङ्गवैः ॥१७॥

जलजं श्रियोषितमदो जलजं

कुमुदं दधाति न दिवा कुमुदम् ।

सरसीह वारिमरुता सरसी—

रुहता तरङ्गविशरारुहता ॥१८॥

परिणाहिसौरभरसं भरसं—

भृतसीकरेण मरुता मरुता ।

न च तत्सरः सुपुलिनं पुलिनं

चलदूर्मिहंसकलितं कलितम् ॥१९॥

कान्तालता विचकिलैः कमलैर्नितातं

कान्तालता गिरिमृगारिमृगावरुद्धा ।

कान्तालतामिह समाश्लिषदेष यक्षः

कान्तालतामहह ! गायति किन्नरीयम् ॥२०॥

चञ्चद्रनाम्भोजकदम्बलेखा

रम्या वनाम्भोजपरागराजिः ।

शाला वनाम्भोजनितालवालै—

मूर्तेव नाम्भोजतया किमु श्रीः ॥२१॥

रुद्धं विहङ्गमगणैर्गगनान्तरालं

पश्य स्फुरत्सरसिजैरिह नान्तरालम् ।

त्वां मां सुकेसरततिः किमु नान्तरालं

सद्योऽपतत् सुरभितापघनान्तरालम् ॥२२॥

शालीनशाली न किमत्र चक्रः

कान्ता न कान्ता ननु यद्यदूरे ।

सद्योऽवसद्योऽवतरत्प्रतापे

कामानुकामानुगतोऽतिघर्मे ॥२३॥

स्फारस्फुरन्मदकलोदकलोलहंस—

द्वन्द्वं सदागति सदागतिचञ्चलोर्मि ।

ईषत्प्रतापपवनोपवनोपशोभि

भाति स्म भामिनि : सरोजसरो जलौघैः ॥२४॥

वारिवाहपरिमुक्तमदभ्रं

वारिवाहविशदोर्मिसरस्याम् ।

कोमलो वहति वायुरिहाब्जान्

कोमलो बत जहाति विधुन्वन् ॥२५॥

वनेऽत्र वानीरततिर्विभासते

सरस्सु वा नीरजपङ्क्तिरुज्ज्वला ।

पिकस्य कान्ता रणति स्म निर्भरं

मधौ न कान्तारगिरं मुदोऽदधाम् ॥२६॥

विभर्ति कादम्बकदम्बराजितां

तटं तटाकस्य भवत्पराजिताम् ।

न भीरु ! भूमिरुहतातरङ्गिणी—

तटे किमुल्लोरयैस्तरङ्गिणी ॥२७॥

अयि ! प्रकाण्डैर्जरठेऽपि भूरुहा—

ङ्गणे गणे या धुरि सा रसालता ।

न नागवल्लेरपरातिशायिनी

व्यलोक्य तत्क्वापि महारसालता ॥२८॥

सारङ्गता तरलतारतरङ्गसारा

सारङ्गता तरलतारतरङ्गसारा ।

सारङ्गता तरलतारतरङ्गसारा

सारङ्गता तरलतारतरङ्गसारा ॥२९॥

॥ महायमकम् ॥

मन्दारवैभवभृतोऽत्र तरुप्रकाण्डा

मन्दारवैर्धुतदला मलयानिलौघैः ।

नानारतं दधति किन्नरश्रौवताति

नानारतं स्थिरतरा युवतेति मत्वा ॥३०॥

स्मारं धनुः किमु पलाशतरोः सुमानि  
 मानिन्यथो तरलया सुकटाक्षबाणान् ।  
 बाणानुसन्धिनिरतो मदनो नितान्तं  
 तान्तं स्वमद्य मनुतां किमु नोन्मदिष्णुम् ॥३१॥

अयि ! मधुसमये मयेह सार्धं  
 विचर रविर्मलयालयान्निवृत्तः ।  
 अथ धनददिशं दिशन्ति सौरा  
 हयविसरा विशरारुवल्गनानि ॥३२॥  
 । एकोनविंशतिभिः कुलकम् ॥

कृतपुङ्खबाणगण एष किल  
 स्मरधन्विनो नवसुमप्रसवः ।  
 प्रसवत्यथो किशल्यं तरुताऽ-  
 स्य नु तेजनाय नवशाणमिव ॥३३॥

मधुपा मधौ नु नलिनीमधुपा  
 रचयन्ति झङ्कृतिमिवारचयन् ।  
 नवशङ्खनिस्वन इयानवशं  
 हृदयं वियोगिन उरो हृदयम् ॥३४॥

पिककाकलीकलकलः कलयन्  
 अथ तारतारतरतूरवम् ।  
 अभिषेणनं चलचलद्वलव-  
 न्मदनस्य किं पटुपट्टकृतवान् ॥३५॥

नवरसालरसालयमञ्जरी-  
 मुकुलिताकुलितालिततिर्घना ।  
 वनरमा धवमाधवसौष्ठवात्  
 प्रवितता विततालिरथोऽम्बरे ॥३६॥

सपुलका पुलकाकुलकामिनी  
 कलितदोलनदोलितदोलया ।  
 ननु विभाति विभाऽतिभरादियं  
 गहनभूरणुभूरिविभूतिभिः ॥३७॥  
 ॥ सुरभिवर्णनम् ॥

अथि । पिपर्तु तपर्तुरुपागत—  
 स्तव मनोजमनोरथमद्भुतः ।  
 सजलजां जलजां किल शीतता—  
 मतितरां स्पृहया स्पृहयालुकः ॥३८॥

वहति वारि कृशं नु भृशं कृशा  
 दयितवर्षणवर्षवियोगिनी ।  
 सुनलिनी मलिनीकृतवारिभिः  
 खगकुलैर्बकुलैः सवनीधुनी ॥३९॥

न पथिकः पथिकीं पथि रागिणीं  
 स्पृहयतीह विलोलविलोचनाम् ।  
 प्रतपनात्तपनस्य पनायितां  
 गिरमुदारमुदा न वदोऽवदत् ॥४०॥

कृतविशालरसालदलस्थिति—  
 मधुकरी न करीरमरीरमत् ।  
 न भुजगी भुजगीकृततच्छविः  
 स्पृशति बर्हिणबर्हगतोरगम् ॥४१॥

न च शिरो द्वयसन्द्वयसङ्गत—  
 स्त्यजति तज्जनिमज्जनसज्जनः ।  
 वनगजो नगजो नगयोनिजं  
 जलमलं सरसीः परिशीलयन् ॥४२॥

मृगयते मृगतृष्णिकया मृग—

स्तरलितो ललितोदकपल्वलम् ।

इह हि फुल्लति मल्लिमतल्लिका

पटु पपाट न पाटलमत्र किम् ॥४३॥

॥श्रीष्मवर्णनम् ॥

अथ घनाघनगर्जितमूर्जितं

कृतकलाऽपि कलापिकलस्वरम् ।

अयि ! निभालय भालयमायुधं

सुरविभो रविभोदितमम्बरे ॥४४॥

अयि ! तडित्तनुतेऽतनुतेजनं

घनघनान्तरितः परितः शशी ।

सकमलानि मलानि दधुस्तरां

किल सरांसि परां शितितां क्वचित् ॥४५॥

सकलहं कलहंसततिः समा—

नयदमानममानससंश्रयम् ।

किमु न केतकमेतकमीक्षसे

सुतनु ! सौरभसौरभसौरसम् ॥४६॥

अयि ! कदम्बकदम्बमुदञ्चति

स्फुटसुमानि सुमानि निधारयत् ।

सुमनसां मनसामिव सन्तति—

र्न सुमनाः सुमनाशमिता सिता ॥४७॥

किमु समीरसमीरणज्ञाङ्कृति—

स्वनवशंकरसङ्करशीकरः ।

स विससार ससारसनिम्नगा—

तटमटत्पटहध्वनिडम्बरः ॥४८॥

दूरमारसरः पूरः

स्फारतारतरस्वरः ।

सारसारवरः पार—

चारसारतरस्तरः ॥४९॥

॥षोडशदलं कमलं गोमूत्रिकाचित्रं च ॥

तमालविततच्छाया—

तरुच्छुरितभूयुतम् ।

सरो रविप्रबुद्धया

नलिन्याऽरिपुतां गतम् ॥५०॥

॥चतुष्कारं चक्रम् ॥ ॥वर्षावर्णनम्॥

शरदि नीलमणीरमणीयता

नमसि भास्वति भास्वति भाति भा ।

कमलताऽमलता जलता स्थिता

विशदयाऽऽशुदया सुहितां दृशम् ॥५१॥

तरुणकिरणरोचिश्चण्डमार्तण्डबिम्बं

सरसि सरसिजौघः प्राप सामोदमोदम् ।

विसविशसनलुब्धो मानसं मानसौकाः

शरदजनि जनीवोन्निद्रचन्द्रावतंसा ॥५२॥

तरुणतरंगिरुच्यं वीक्ष्य दिग्दारवार—

स्त्रिय इति रतिरागात्काशहासत्वमापुः ।

अमलकमलचीनाः स्वच्छगुच्छस्तनोद्धा

हिमहिमकरबिम्बादर्शमादर्शयन्त्यः ॥५३॥

शरदजनि जनोराट् सान्द्रचन्द्रातपत्रा

शुचिरुचिचमरौघैर्वीजिता काशहासैः ।

विमलकमलपीठादभ्रशुभ्राभवासा

विशकिशलयलक्ष्याऽलङ्कृताऽलङ्कृता सा ॥५४॥



असकलकलमात्रं चारुवन्दारुचञ्च्वा  
 शुकततिरतिहृद्यामाददाना तनान ।  
 घनघनपटलान्तश्चारुचुम्बीन्द्रचाप—  
 श्रियमुपवनवीथीमध्यमध्यासितेयम् ॥५५॥

अथ कथमपि बर्ही बर्हमुज्झाञ्चकार  
 त्वदलकलतिकायाः स्पर्द्धया कान्तिगर्द्धी  
 सह सहचरमाने नापमानावरीणो  
 रुचिररुचिरमपि स्वैश्चन्द्रकैश्चन्द्रकान्तैः ॥५६॥

सरससरसिजानामिष्टगन्धप्रबन्धान्  
 मधुरमधुकरोक्तिस्फारझङ्कारगीतान् ।  
 प्रथयति पवनः स्मागण्यसौजन्यपुण्यः  
 सहृदयहृदयान्तश्चिच्चमत्कारकारान् ॥५७॥

सारसा रवसारा सा  
 रुचा ता नवकारिका ।  
 कारिकाऽवनता चारु  
 सारा सा वरसारसा ॥५८॥  
 ॥अनुलोमप्रतिलोमः॥ ॥शरद्वर्णनम् ॥

हिमगिरिपरिरम्भस्फीतशीतप्रकर्षो  
 मदकलकलहंसं पद्मखण्डं विधुन्वन् ।  
 युवनिधुवनखेदस्वेदविच्छेदकर्ता  
 सुतनु ! न तनुमानं हैमनो वाति वातः ॥५९॥

पुलकयति शरीरं भीरु ! दन्दस्यते वा  
 मधुरम्भधरमेष ख्लेषसंरम्भदम्भात् ।  
 प्रथयति पृथुरङ्गे कम्पसम्पत्तिमुच्चै—  
 रयमयमयि ! वायुहैमनः कामनः किम् ॥६०॥

इह दहति हिमानी पुष्करं पुष्करिण्या—

मिह मरुवकगुल्मः परलवोद्भेदमापन् ।

अयि ! समयवशाः स्युः सम्पदोऽसम्पदो वा

विधिविलसितलास्यं प्रायशो नैकरूपम् ॥६१॥

रजनिरजनि दीर्घा त्वद्रहःकेलिसान्द्र—

स्तनजघनघनाङ्गश्लेषविश्लेषभीत्या ।

दिनमथ लघुदीनं भीतभीतं नु शीता—

न्ननु गुरुरगुरुर्वा कोऽपि कस्मिन्विवर्ते ॥६२॥

यवशिरसि शरारुश्चारुकिशारुरेषां

खगमुखरमुखानां सस्यसम्पद्विधायी ।

विलसति नु विलासिस्मारयुद्धात्मरक्षी

तव करकरजः किं बालनालाग्रचुम्बी ॥६३॥

किरद्विचकिलाब्जौघं

किल सत्केकिराजितम् ।

वरं शुचिबलाकौघं

विलसत् कं सरः स्थितम् ॥६४॥

॥तुरगपदबन्ध, कपाटसन्धिबन्ध, चतुष्कारचक्र, गौमूत्रिकादि

नानाचित्रावधानबद्धं पद्यम् ॥

॥हेमन्तवर्णनम्॥

तव नवभुजवल्लीसौकुमार्यं शिरीष—

द्रुमकुसुमसमूहः स्पर्द्धया गर्द्धतेऽस्मिन् ।

कथमिव युवभृङ्गाश्लेषमेष प्रतीच्छ—

त्यथ मधुमधुरोक्तैस्तावकैर्धित्कृतद्धिः ॥६५॥

इह नहि मिहिकांशुर्दृश्यते छादितेऽस्मिन् .

नभसि मिहिकयाऽभ्रभ्रान्तिबाधां दधत्या ।

अहनि मिहिरबिम्बोदामधामापि लुप्तं

भज निजभुजवन्धं शैशिरा वान्ति वाताः ॥६६॥

अमलकमललक्ष्मीः प्लोषिता कुन्दवल्ली—

मुकुलकुलमयि ! त्वददन्तदीप्ति ततान ।

इह किल मृगनेत्रारात्रयः किं मृगाक्षि !

त्वमपि मृगयसे नो मद्विधं मृग्यमीषत् ॥६७॥

पिककुलकलकण्ठात्काकलीक्वाणरभ्यः

कलकल इह शान्तः काककोलाहले यत् ।

निबिडजडवितुण्डाडम्बरे प्रस्तुतेऽत्र

क्व च पटुचटुवाचां सत्प्रवाचां प्रकाशः ॥६८॥

नयननलिनलीलाऽपाङ्गरङ्गतरङ्ग—

स्फुटतरतरलत्वं खञ्जनस्ते व्यनक्ति ।

मधुकरनिकुरुंबोद्धूतपङ्केरुहश्रीः

स्थलकमलतटस्थो वल्गुवल्गत्तमोऽयम् ॥६९॥

॥ शिशिरवर्णनम् ॥

तरुणि ! तरुण तेऽयं तुङ्गशृङ्गारभङ्गी—

शिखरिशिखरसिन्धुः केलिकल्लोललोला ।

किमुत रतविलम्बस्त्वत्पदोः पापतिर्मे

स्फुटमुकुटमणिश्रीमञ्जरीमञ्जुपुञ्जः ॥७०॥

इति मधुमधुरेण प्रेमपीयूषसार—

स्वतलहरिभरेण प्रेयसी श्रेयसी सा ।

दयितदयितसूक्तेनानुनीता स्मितेन

स्फुटनिधुवनधाराघोरणि व्याजहार ॥७१॥

अथ मृदुयदुवाणीपञ्चबाणीसहायो

रतिपतिरतिमानप्रौढिमानं दधानः ।

सुतनु ! नयनभङ्गीभङ्गुरभ्रुविलासै—

व्यधित धनुरनुस्वं चारुवन्दारुचूडम् ॥ ७२ ॥

सतनसुरतरङ्गोत्तुङ्गशङ्गारभङ्गी—

नवनवयुवलीलानर्ममर्माणि तन्वन् ।

यदुपति रतिरङ्गप्रेमपीयूषवापी—

कृतरतिजलकेलिः कान्तयाऽसौ तथाऽऽसीत् ॥७३॥

प्रिय इति सततानि तानि तन्वन्

प्रियतमया समया स्वमेकयाने ।

नवयुवल्लनानि वेद मार्गं

न गतमरिष्टपुरं क्रमात्समापत् ॥७४॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेय—

पण्डितेशश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये

वनविहारवर्णनो नाम नवमः सर्गः ॥९॥

## दशमः सर्गः

स स्वयं विभुररिष्टपुरस्यो—

पद्दारं स्वशिविरं विनिवेश्य ।

तच्चतुष्पथमपावृतवृत्याऽ—

लञ्चकार पदचारविहारैः ॥१॥

रोहिणी रुधिरराजतनूजा

या स्वयम्बरवरे कृतसन्धा ।

तत्करग्रहमहे समुदीतं

\* राजकं स समुपेत्य ददर्श ॥२॥

कोऽपि कण्ठमणिदीप्तिकदम्बे

चुम्बितं स्वमुखबिम्बमुदीक्ष्य ।

अङ्गसङ्गतमनङ्गमिव स्वं

मन्यमान इह मानमुवाह ॥३॥

कोऽपि दर्पणकरः स्वकिरीटं

विच्युतं किमपि मौलिशिखाभ्रात् ।

अध्यतिष्ठिपदहंयुरस्वर्वं

गर्वपर्वतशिरः स्वमथायम् ॥४॥

लीलया सरसिजं स्वकरेण

भ्रामयन्निह परो मुखलक्ष्म्या ।

स्पृह्यमानमुपतकथं स नूनं

तत्तिरस्करणमेव ससर्ज ॥५॥

कस्यचिद्विकचवारिजिष्णू

राजशेखरमणेर्मुखपद्मः ।

चारुभात उत भङ्गुरभङ्गी—

विभ्रमैरपि च लोचनपद्मौ ॥६॥

कस्यचिच्चटुलवाक्चतुरस्य  
स्मेरपङ्कजसनाथकराब्जे ।  
शालिनी मृदुलमञ्जुलक्ष्म्या  
किं न सभ्रमदमदं न विधत्ताम् ॥७॥

एककस्य मुकुटाच्छमरीची-  
वीचयोऽन्यनृपतेर्हृदि हारः ।  
कुण्डले श्रवणयोरपरस्या-  
प्यदभुतादभुतरसं ननु गाते ॥८॥

कुन्दसुन्दररुचीनिचितश्रे-  
णीनिबद्धशुचिरागरहस्यम् ।  
राजराजिरथ तत्कुलपक्षौ  
तद्यशांसि जगदेकमुदेऽपि ॥९॥

कोऽप्यनङ्गमदघूर्णनपूर्णा  
दृष्टिमारचितसाचित्रज्जाम् ।  
सन्निधाय विदधावनुलापं  
कण्ठलम्बितभुजो निजभृत्ये ॥१०॥

कश्चिदुन्नमितकन्धर एव  
प्रैक्षत स्वनववेषविभूषाम् ।  
कोऽपि नागलतिकादलपूगं  
लीलया दशति मन्दमतन्द्रः ॥११॥

इत्यवेक्ष्य यदुरदभुतवेधं  
राजकं कनकपीठशिरःस्थम् ।  
विधयाऽथ परिवर्तितरूपः  
स्वैरमेष निषसाद समाजे ॥१२॥

तत्क्षणादवततार कुमारी  
 रोहिणी रचितमङ्गलवेषा ।  
 आलिभिः परिवृताऽप्यथ मध्ये—  
 राजकं वरणदामकराऽसौ ॥१३॥

सा किमुज्ज्वलरसाम्बुधिवेला  
 यौवनेन्दुकलयोद्धलितेव ।  
 स्मारचापसशिलीमुखमौर्वी  
 कामिमानससरोजमराली ॥१४॥

चित्तभित्तिषु नरेन्द्रसभायाः  
 पुत्रिका किमुदटङ्कि नु टङ्कैः ।  
 कामकारुविदुषा निपपे तै  
 राजभिः स्वनयनाञ्जलिपात्रैः ॥१५॥ ॥ युग्मम् ॥

तत्सदस्यनृपर्वशचरित्र—  
 स्फूर्तिकीर्तिगुणकीर्तनमस्याः ।  
 शंसति स्म शुचिसौष्टवगर्भै—  
 वैत्रिणी पटुतमा पटुसूक्तैः ॥१६॥

तत्तदुज्ज्वलकुलानि बलानि  
 स्फारतारचरितानि नृपाणाम् ।  
 सुश्रुतान्यपि मुदे न नलिन्या--  
 श्वन्द्रश्मय इवासुरमुष्याः ॥१७॥

पौरुषं कमनवत्कमनीयं  
 रूपमद्भुतकलाकुशलत्वम् ।  
 ही विधिर्विघटयत्यखिलं तत्  
 प्राणिनां व्यवसितं प्रतिकूलः ॥१८॥

सूक्तयो जडिमभाजि सदस्येऽ—

थाञ्जनाद्रिशिखरे शशिभासः ।

ऐयरुर्नृपगुणा विफलत्वं

वैमनस्यजुषि राजसुतायाम् ॥१९॥

भूपभूमभगणेऽथ कथञ्चित्

सातिगं यदुकुलाचलचन्द्रम् ।

अद्वितीयमनघातमपश्यत्

पूर्वपक्षविमताविव तत्त्वम् ॥२०॥

रोहिणीव विधुबिम्बमखण्डं

रोहिणी यदुमदूरतरस्था ।

प्रेममेदुरदृशा मदिराक्षी

वीक्ष्य सम्भदमदं परमाप ॥२१॥

कोऽपि दृष्टिमहिमाद्भुतधर्मा

संस्तुतानपि च तानवधूय ।

अप्यपूर्वपुरुषेऽत्र निमज्ज्या—

नन्दसुन्दरपदं प्रमिमीते ॥२२॥

सा तदा वरणदामसुकण्ठी

कण्ठपीठ उपकण्ठमुपेत्य ।

यादवस्य निदधे विदधे तं

वेध्यमाशु विशिखैर्विषमेषुः ॥२३॥

विद्यया विकृतविग्रहमेतं

वीक्ष्य राजसुतया वृतमाशु ।

अक्षुभत्प्रलयवारिधिवत्त—

द्राजकं स्मयसमीरणकम्पम् ॥२४॥



अस्मकास्वहह सत्सु महत्सु  
 क्षुद्र एष किमु राजसुतार्हः ।  
 वारलाऽर्हति मरालविलासा—  
 वच्छटां बलिभुजां न परीष्टिम् ॥२५॥

द्राक्तदेनसुपमृद्य बलेना—  
 च्छिद्यतां वयसुरीकरबाम ।  
 चक्रिरे प्रतिघदष्टनिजोष्ठा—  
 स्तद्वधोद्यममिति प्रवितर्क्य ॥२६॥

अत्यहं किमु करग्रहकृत्यं  
 स्यादिति प्रणिगदन्नृपवर्मः ।  
 सम्मिले परिवाह इवाब्धौ  
 यादवप्रश्मने हूदिनीनाम् ॥२७॥

तत्पर्दं जगति गन्तुमशक्ता  
 दुर्जना हि महतामवहेलाम् ।  
 तन्वते द्युतिपतेरिव धाम्नां  
 तामसद्विजकुलान्यमलानाम् ॥२८॥

सत्कलावति जगज्जननेत्रा—  
 नन्दने धवलक्ययपि विश्वम् ।  
 पूर्णिमाशशिनि सूचकदृष्टि—  
 लाञ्छनं पटुतया त्रिवृणोति ॥२९॥

मोदते शुकगिरा न बिडालो  
 नो हरिर्धृगमदेन मृगस्य ।  
 ताण्डवेन शिखिनो मृगयुर्नो  
 किं गुणैः खलु खलस्य शशासेः ॥३०॥

इत्यवेत्य यदुरदभुतविद्याऽऽ—

विःकृतस्वचतुरङ्गबलौघः ।

ढौकते स्म समरेऽथ विशङ्कः

कर्कशेषु मृदुता नहि नीतिः ॥३१॥

तत्र तेषु मगधाधिपतिः स्वान्

दन्तवक्त्रमुखभूपतिमुख्यान् ।

आदिदेश हत राजगणद्धि—

स्पद्भिर्न द्रुतममुं समितीति ॥३२॥

संननाह मिलिताऽथ नृपाणां

मण्डली यदुपतेरुपकण्ठम् ।

सोऽपि कार्मुकमधिज्यमभीकः

संविधाय शरवृष्टिमुञ्चत् ॥३३॥

काण्डवद्भिरथ तैर्लघुहस्तं

काण्डवृन्दमभिसुक्तमजस्रम् ।

स्वाद्धचन्द्रविशिखैः सह युध्वा

तञ्चकत् यदुरन्तरतोऽपि ॥३४॥

स्नाकशराशरि परस्परमासी—

द्युद्धमुद्धतरुषां द्वितयानाम् ।

भूभृतामथ गदागदि शस्त्रा—

शस्त्रि चास्यसि भुजाभुजि भीमम् ॥३५॥

गन्धसिन्धुरघटाभिरथोभा—

दन्त्यघाटि समदं तुमुलं तन् ।

गर्जितोर्जितरवैरिह तासां

व्यानशो जगति शब्दविवर्तः ॥३६॥

शौरिणा निजशरासनमुक्तै—

राशुगैरकृतमण्डपमुच्चैः ।

स्वीयकीर्तिलतिकोत्थितिहेतो—

विस्तृतं वियति लब्धवितानम् ॥३७॥

सादिनि प्रतिभटे युधि सादी

स्याद्रथी युधि यदू रथिरोऽसौ ।

पादचारिणि च पादविहारी

न्यायचञ्चुरकरोन्नययुद्धम् ॥३८॥

वाजिपत्तिरथकुम्भबलानां

बलगतामिह बलादुभयेषाम् ।

प्रोच्छलद्बहुलधूलिवर्तै—

भूरुपागतवती दिवि मन्ये ॥३९॥

द्राग्दिवाकरपरासनदक्षोऽ—

थादधच्चरणडम्बरमुच्चैः ।

वारिसंवृतिधरः परसैन्यं

गाहते यदुबलस्य करेणुः ॥४०॥ ॥ वर्णच्युतकम् ॥

कोशव्यकौशसम्बन्ध—

मलीमसहृदाविलम् ।

बद्धमुष्टिं सदादाने

कृपणं कोऽत्र नाश्रितः ॥४१॥ ॥ मात्राच्युतकम् ॥

घृतकुन्ततोमरकृपाणा भासुरा

ततपत्रिचञ्चुपुटकोटिकुट्टना ।

कृतवीरपानवरवीरविक्रमा

किल राजति स्म समिदुद्भटैर्भटैः ॥४२॥

इह नन्दिनीवृत्ते प्रतिपादमाद्याक्षरद्वयपाते रथोद्धतावृत्तेन  
समरवर्णनम् ॥ वर्णद्वयच्युतकम् ॥ वृत्तद्वयश्लेषश्च ॥  
लसत्कटकता तीक्ष्णा करजावलिबद्धना ।  
राजत्याजीरजोराजी धूसरश्रियमाश्रिता ॥४३॥

॥इह कण्टककरञ्जपादाब्दिन्दुच्युतकम् ॥

कुः काङ्ककङ्ककैकाकि

काकिकाककुकैकिका ।

काङ्काङ्कककाकाक

ककाकुः कङ्ककाकका ॥४४॥ ॥एकव्यञ्जनचित्रम्॥

काकोलकालकङ्काल—

कीलालककाकुला ।

कुः कालिका ललल्लोलेऽ—

लीकाकलकलाकला ॥४५॥ ॥द्वयक्षरचित्रम्॥

स्वक्षुरप्रविशिखैरपि कस्य

छत्रमन्यनृपतेस्तु पताकाम् ।

चिच्छिदे यदुरथान्यतरेषा—

मग्रहीन्मुकुटकुण्डलभूषाम् ॥४६॥

कोऽपि खड्गलतया निजकण्ठं

लोठितं वरणदामवृत्तं च ।

अप्सरोभिरभितो मुदिताभि—

दिव्यपश्यदिह दिव्यशरीरः ॥४७॥

सङ्गता दिविजता दिवि नादं

दुन्दुभेः सुरतरुप्रसवानाम् ।

वर्षणं कृतवती जितशत्रो—

मूर्ध्नि यादवपतेरुपरिष्ठात् ॥४८॥

वीक्ष्य तत्र मगधावनिशक्रो  
 विक्रमं यदुपतेरसदृक्षम् ।  
 स्वं पराजयमुवाच सशङ्को  
 द्राक्समुद्रविजयं स्वजयाय ॥४९॥

प्रातिहारिकनरो जितकाशी—  
 कोऽप्ययं द्रुतममुं निगृहाण ।  
 यद्विडम्बयति विष्टपवित्र—  
 क्षत्रवंश्यनृपकीर्तिपताकाम् ॥५०॥

अष्टभिः सह समुद्रनृपोऽथाऽ—  
 भिक्रमं विदधते स्म सगोत्रैः ।  
 तत्प्रचक्रकरिबृंहितसिंह—  
 ध्वानडम्बरितमम्बरमासीत् ॥५१॥

तत्प्रयाणमुरजस्वनज्ञञ्ज्ञा—  
 ज्ञाङ्कृतिप्रसृमरप्रतिनादैः ।  
 मुद्रिताः सपदि दिग्गजकर्ण—  
 स्कारकोटरकुटीतटदेशाः ॥५२॥

अभ्यमित्रमभिवीक्ष्य समुद्रं  
 सैन्यपूरपरिभूतसमुद्रम् ।  
 स्वीयबन्धुजनसङ्घटनाभि—  
 र्यादवः परमसम्मदमाप ॥५३॥

दर्शयामि निजपौरुषमेषा—  
 मित्युदीर्य धनुषः स्वन्तितेन ।  
 आजुहाव समराय स वीरा—  
 शंसने सपदि वीरकरीरान् ॥५४॥

तदद्वयोरथ मिथोऽधिकमिद्ध—

स्पर्द्धयोः पृतनयोर्मृधमासीत् ।

सदभटेन सुभटस्य च शस्त्रा—

शस्त्रि कावचिकभिन्नमहेभम् ॥५५॥

व्यूढकङ्कटभटः किल बाणै—

वारिबाणभिदया क्षतवक्षाः ।

गन्धधूलिपृषतैरिह रेजे

कुङ्कुमद्रवनिदिग्ध इवान्यः ॥५६॥

काण्डपृष्ठ इह सङ्गररङ्गे

कश्चन व्ययितशस्त्रविभूतिः ।

घावति प्रतिभटं स्वशिरस्त्रं

शस्त्रमेव कलयन्करलग्नम् ॥५७॥

क्रन्दनैः प्रतिभयं हयहेषा—

क्ष्वेडया तुमुलमाकुलमाशु ।

सारसारसनबन्धकबन्धो—

इण्डताण्डवमतीव बभूव ॥५८॥

सिन्धुराम्बुधरगर्जितमस्र—

व्यूहवारिपरिवाहमुवाह ।

धन्वशक्रधनुषाऽसितडिन्द्रिः

प्रावृषेण्यरुचिलक्ष्म मृधं तत् ॥५९॥

सांयुगीनमथ जित्वरमेनं

वीक्ष्य यादवममंस्त समुद्रः ।

विद्यया प्रतिबलं स्वबलं त—

च्छस्त्रभङ्गुरबलं विषसाद ॥६०॥

तावतैव कनकोपयमे यो

लब्धदानविभवः स च बन्दी ।

व्याजहार यदुकीर्तिपताका—

कीर्तनं शृणुत रे जगतीन्द्राः ! ॥६१॥

विद्याविक्रमरूपताऽद्भुतगुणैस्त्रैविद्यविद्याधर—

श्रेणीसर्वसुपर्वपार्वणविधुश्रीगर्वसर्वङ्कषः ।

यः स्वैरी स्वभुजारणिप्रमथनप्रोद्यन्प्रतापानलैः

प्लोषत्युद्धतवैरिवारवनिताहृत्काननानि द्रुतम् ॥६२॥

यो दर्पोद्भुरकन्धरानपि धराधीशान्मृधे धीरधी—

धुर्यो धीरिमधुर्यधैर्यविधुरानिद्धो विधत्ते ध्रुवम् ।

सोऽयं शौरिरलं विलम्ब्य युगलेकमीण् वीर्योऽवनी—

पालास्तत्पदनीरजेऽस्य मुकुटैर्नीराजनं कुर्वताम् ॥६३॥

बन्दिनेति गदिते निजनाम्ना

मुद्रितं यदुरमुद्रितमुद्रः ।

श्रीसमुद्रपदयोः शरमग्रे

चिक्षिपेऽथ सशिरः प्रणमय्य ॥६४॥

यः स्वैरं निरगात्स्वगेश्वरकनीरुदवाह्य भूमण्डलं

भ्रान्त्वाऽथ क्षितिपात्मजां च कनकां पीठालये पत्तने ।

तत्रातस्ततभूरिभूपतिगणे पश्यत्युपायंस्त स

स्वानन्दाद्वसुदेव इत्यभिधया नन्ता त्वदङ्ग्रीद्वयम् ॥६५॥

वाचयन्निति समुद्र इवेन्दुं

स्वानुजं समुपलक्ष्य समुद्रः ।

वेल्लितः प्रमदपूरतरङ्गैः

सस्वजे श्रुतमिवार्थसमूहः ॥६६॥

यत्प्रभूष्णुरपि मूरिविनीतः

कोविदः सुहृदि सौहृदशाली ।

सद्गुणः परगुणस्तुतितुष्टः

प्राप कोऽपि भुवि भूषणभूयम् ॥६७॥

इत्युदीर्य स समुद्रमहीन्द्र—

स्तं निनाय सविधं मगधानाम् ।

वासवस्य स निरस्य रुषं त—

त्स्वागतं वपुषि वार्तमपृच्छत् ॥६८॥

स स्वमब्दशतदेशविहार—

स्फारकौतुकविलोकनवृत्तम् ।

उज्जगौ सकलमप्युपराजं

तस्थिवत्सु निजबन्धुषु शौरिः ॥६९॥

सम्भ्रान्तैरिह रोहिणीयदुपयोः स्निग्धैस्तदा बान्धवै—

रुदवाहो महता महेन विदधे सम्भूय भूयस्तराम् ।

सौभाग्यं सुभगस्य भाग्यमहिमप्राग्भारतावर्णितैः

स्फारस्फूर्जदमन्दसम्मदसुधासान्द्रोर्मिपूराप्लुतैः ॥७०॥

सर्वे माङ्गल्यनादप्रसृमरपरमामोदमेदस्विनोऽत्र

स्थित्वा कालं कियन्तं क्षितिपतिनिवहास्ते जरासन्धमुख्याः।

जग्मुर्देशानथ स्वान्सह सहजनृपैः कंसमुख्यैस्तदानीं

सद्यः शौरिः प्रतस्थे निजपुरमवनीपालमालाऽभिवन्धः॥७१॥

इति श्रीमत्प्रागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेय-

पण्डितेशश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाग्नि महाकाव्ये

विजयश्रीवरणं नाम दशमः सर्गः ॥१०॥ ॥छ॥



एकादशमः सर्गः

स स्वसैन्यपरिबर्हसंवृतः

सञ्चचार मथुरां पुरीं यदुः ।

भूमिजानिरपि नद्धभूषणो

भूषयन्परिधिचक्रवालताम् ॥१॥

लम्भयन्स शिविराणि सैनिकान्—

श्रेषयन्प्रसरणैर्द्विषत्पुरः ।

सज्जयञ्जनपदान्सदाश्रवा—

नाजगाम पुरगोपुरं क्रमात् ॥२॥

इन्द्रनीलवलभीकचा यदुं

केतनाक्षतललाममण्डिता ।

पश्यतीव किल सौधमण्डली

जालकीलितदृशा पुरीवधूः ॥३॥

तोरणालिकलिताङ्गपालिका

शस्तयामुनजलौघसप्तकी ।

लोलवन्दनकलापकम्पिनी

कामुकी यदुमिवाप्य पूर्वभौ ॥४॥

तं कलिन्दतनयाऽम्बुजेक्षणै—

र्वीक्ष्य वीचिरचिताङ्गपालिभिः ।

तद्वियोगमिषमेचकच्छविः

श्लिष्यतीव यदुमागतं चिरात् ॥५॥

तां दुकूलकलिताट्टमालिकां

यौवताध्युषितचन्द्रशालिकाम् ।

वीथिकाततवितानशालिनीं

सौधमूर्द्धधृतकुम्भकेतनाम् ॥६॥

स्वस्तिकाजिरतलेषु मौक्तिक-

स्वस्तिकै रचितचारुमण्डनाम् ।

वर्द्धितो युवतिलाजमोक्षणेः

प्राविशन्निजपुरीं यदृद्धहः ॥७॥ ॥ युग्मम् ॥

जालकेषु पुरसुन्दरीदशां

निर्निमेषविनिपातकुल्यया ।

पीयते स्म यदुरूपचातुरी-

चारिमाद्भुतसुधारसद्भवः ॥८॥

पौरनायनमरीचिभृङ्गता

सङ्गता यदुमुखारविन्दजाम् ।

सुन्दरत्वमकरन्दमाधुरीं

नौज्जदन्तिकचरी सुपीवरी ॥९॥

द्राक्कुमारनिपुणाः पुराङ्गना-

लाजमोक्षणपुरस्सराशिषः ।

कुम्भसम्भृतिकृतीरुमङ्गला-

स्तेनिरेऽथ जयज्ञसिनीर्यदोः ॥१०॥

पारिजाततरुमञ्जुमञ्जरी-

पिञ्जराः कुसुमपुञ्जवृष्टयः ।

विद्रुता दिविषदा जगश्रियो

मूर्द्धनि प्रतिभुवो बभुर्विभोः ॥११॥

काचिदच्छमुखचन्द्रचुम्बिनीं

कान्तिनिर्भरसुधां यदुप्रभोः ।

संस्तवादपि निपीय कामिनी

चन्द्रकान्तमणिवद्व्यदृष्टवत् ॥१२॥

पूःस्त्रियोऽथ कनकाऽऽननाम्बुजं  
 लोललोचनशिलीमुखं मुहुः ।  
 स्वं निनिन्दुरुपनम्रकन्धरा  
 वीक्ष्य रूपगुणरामणीयकम् ॥१३॥

सा वधूः पुरपुरंधिलोचन—  
 श्रीमसारमणिमण्डिता भृशम् ।  
 तां कनककककान्तिभास्वरां  
 भासते स्म दधती तनुं तनुम् ॥१४॥

यादवः कुसुममाह्यशेखरो  
 मुग्धमूर्द्धधृतधर्मवारणः ।  
 चारुचामरवितानवीजितो  
 बन्दिवृन्दवचनोपबृंहितः ॥१५॥

सृष्टमङ्गलविधिः पुरोधसा  
 वाद्यमङ्गलनिनादवद्धितः ।  
 जायया सह जयेति शंसितोऽ—  
 अंलिहं स निजसौधमाविशत् ॥१६॥

तच्च निष्कुटतटस्फुटस्फुट—  
 ज्जातिकोरकविसारिसौरभम् ।  
 मेचकागुरुजधूपधूमतो—  
 दगारिगर्भगृहजालजालकम् ॥१७॥

तत्कवचिन्मृगमदागरुद्रव—  
 च्चन्द्रचन्दनजपङ्कसङ्करम् ।  
 क्वापि कुन्दकुरुविन्दमालिका—  
 मेलकाञ्चितसचित्रभित्तिकम् ॥१८॥

कुत्रचिद्रचितशालिभञ्जिका—

लास्यहास्यकलितोरुमण्डपम् ।

कुत्रचित्कनककेतकीदला—

मोदमेदुरिततरुपकल्पनम् ॥१९॥

सन्महारजतराजिराजिता

भित्तयो रजतपट्टिकाभृतः ।

यस्य नैकविधरत्नकुट्टिमा—

श्वाकचिक्यकलिता भुवो बभुः ॥२०॥

यत्पृथग्विधमणिप्रभाभरे—

दर्शदर्शिततमांस्यपाकरोत् ।

चद्रकान्तकृतचन्द्रिकाऽमृतै—

स्तापताऽपनयनाय यत्तपे ॥२१॥

शौरिसूनक्षयनीयवासितै—

र्यस्य मान्यकुसुमोत्तरच्छदैः ।

भूमयः किल ललामभूषणी—

मृतभालफलका बभासिरे ॥२२॥

यत्र हाटकविटङ्कमङ्कजै—

रुज्ज्वलस्य निरटङ्कि मूरिभिः ।

शिल्पिभी रतिपतिश्रुतोदित—

द्वन्द्वकेलिपरिग्भविभ्रमैः ॥२३॥

अध्युवास किल नागदन्तकान्

च्छेकेकेकिकलविङ्कमण्डली ।

यत्र जम्पतिरतोत्सवप्रथा—

कारिकाऽस्ति शुकसारिकाद्वयी ॥२४॥

यत्र वैणविकवैणिकैः कृता ।

वेणुवैणरवतारझङ्कृतिः ।

गीतिरीतिरपि नावृट्न्मृगो—

तुङ्गशङ्गभरभङ्गिभङ्गुरा ॥२५॥

यत्र मौरजिकघोङ्कृतिध्वनिः

पाणिघस्य तलतालताडनम् ।

नाटकेषु विरराम न क्वचिद्

व्यञ्जकस्य पटुवृत्तिचातुरी ॥२६॥

तत्र सौधशिखरक्षणान्तरे

संस्कृताभिनवमत्तवारणे ।

वृष्णिभूकनकयोस्तदा तदा—

विर्बभूव रतकेलिकौतुकम् ॥२७॥

॥ द्वादशभिः कुलकम् ॥

दीप्रदीपकशिखोन्मिषत्त्विषो

रेजिरेऽत्र किमु कामभूसृतः ।

विष्टपत्रयजप्रथोलसद्

दोःप्रतापतपनस्फुरत्कराः ॥२८॥

हावभावललितास्तदा तयोः

कामकामकमनीयकेलयः ।

प्रादुरासुरपि वा कृशाश्विनां

ये विशारददृशां न गोचराः ॥२९॥

तां रिरंसुरथ सोऽप्यहर्दिवं

पापमाप किमु तत्त्ववित्क्वचित् ।

ज्ञानिनां किल कलङ्कपङ्कता

लिम्पते न विषयस्पृशामपि ॥३०॥

सद्विपाकफलितानि तद्विदां

श्लेषहेतुरिव नाप्य तद्विदाम् ।

श्लिष्यते हि हविषा यथा करः

किं रसज्ञरसनाऽपि तावता ॥३१॥

स्वस्वकालपरिणामसम्भवा

कर्मजा किल विपाकवेदना ।

ब्रह्मशर्मदधतो नु तद्विदो

भोक्तुरप्यथ रुणद्धि नो मनः ॥३२॥

वस्तुनोरिह निमज्जतोभिदा—

स्त्येककेऽपि किल पङ्कसङ्करे ।

किं कनत्कनककिङ्किणी मृदि

प्रावृतेव विरजीभवेत्कुशी ॥३३॥

साऽथ चाटुवचनैरुपाहृता

शौरिणा निजभुजाङ्कपालिभिः ।

कोपनेव न च तदिदं तदा

पश्यति स्म शयने पराङ्मुखी ॥३४॥

संकथाऽर्थमुदिता न चाब्रवीद्—

भर्तृचाटुशतहारिहूतिभिः ।

पाणिकोकनदचुम्बितोऽथ सा

मार्दवद्रुतमनाः किमप्यभूत् ॥३५॥

वल्लभो निधिनिधये मोहितो

मे हृदीति सुदती विचिन्त्य किम् ।

तं पुरःस्थमिति नादरिण्यभूद्—

बिभ्रतीतरधियं पतिव्रता ॥३६॥

मानभङ्गुरतरभ्रुवा स्मरो  
 धन्वभृद्वरतनोश्चलदृशा ।  
 काण्डवानथ च हुङ्कृतैरहो  
 बाणराणिभिरुपासनं व्यधात् ॥३७॥

प्राक्चुचुम्ब तदलीकमानतं  
 भीरु ! चारुवदनं विमुद्रय ।  
 इत्युदीर्य निजपाणिनोद्धृतं  
 तन्मुखं स दरशङ्कितः पपौ ॥३८॥

शातकुम्भनिभकुम्भसम्भृतिः  
 कण्ठदाम ननु काममर्हति ।  
 इत्यनूद्य निजकण्ठकन्दली—  
 हारमेतदुरसि प्रभुर्न्यधात् ॥३९॥

नीविचुम्बि करकुङ्मलं यदोः  
 साऽरुणस्त्वभुजवस्त्रिवेस्त्रनैः ।  
 त्वत्सखीजन इवास्म्यहं ततः  
 स्वाङ्गमङ्ग किमुतापलप्यते ॥४०॥

स ब्रुवन्निति तदाच्छिनचदा  
 नीविबन्धनमुदीतसम्मदः ।  
 तावक्कोरुकदलीपरिष्टितां  
 मत्करो नु विदधातु पातुकः ॥४१॥

बाधितोऽस्मि सुतरामुदन्यया  
 तत्पिपासुरधरामृतं तव ।  
 उन्नमय्य मुखमित्यवेक्ष्य स  
 स्वादु तन्मुखसुधाविधामधात् ॥४२॥

क्षीब एष वदनासवात्तव  
 स्वावदंशदशनं समीहते ।  
 संलपन्निति ददंश चाधरं  
 मत्तमत्त इव विभ्रमं दधत् ॥४३॥

त्वन्मुखस्य भृतिभुक्पुनर्जनो  
 भृत्यकृत्यकरणाय करुपते ।  
 तस्वदूरुभुजवत्समर्दनं  
 सम्प्रतीति करवाणि वाणिनि ॥४४॥

स्थातुमेनमनिरीक्ष्य नाददात्  
 सुभ्रुवो रतिपतिर्न च त्रपा ।  
 वीक्षितुं वरयितर्यनारतं  
 तद्दृशौ विदधतुर्गतागतम् ॥४५॥

सा तदोन्मिषितमेव सम्मदाद्—  
 व्रीडया निमिषितं च विभ्रती ।  
 सङ्कुचद्विकचसूनशालिनी  
 सालिनीव नलिनी विदिस्रुते ॥४६॥

स्वालिभिः कथमिवोपवेशिता  
 सिष्मिये स्मितवति प्रभौ न सा ।  
 जरुपति स्म न च जरुपति स्मयात्  
 सा च साचिवदना स चुम्बति ॥४७॥

शायिताऽथ शयने विनिर्यती  
 साऽऽलिभिः सहचरी सहान्वगात् ।  
 नो सनीडमभजत्सभाजिता  
 पर्यभावि स तथाऽन्वभावि च ॥४८॥



तां सिसान्त्वयिषति स्म सान्त्वनैः  
 स प्रियः प्रियवचो निमन्त्रणैः ।  
 कामकामपरिरम्भलम्भनै—  
 रानयन्निजवशं वशंवदः ॥४९॥

ह्रीपिधानपिहितेन कुञ्चित—  
 स्वौजसा सितमथ स्मराग्निना ।  
 तेन रुच्यचटु वाग्विमुद्रणो—  
 न्मुद्रितेन झगिति प्रज्ज्वले ॥५०॥

मन्मथतशतेष्वधीतिना  
 सा क्रमेण यदुनाऽन्वनीयत ।  
 स्वं धनुः स्मरधनुर्धरः प्रिया  
 व्रीडया सह मनागनामयत् ॥५१॥

निस्तलत्वमथि ते स्तनद्वये  
 हारशुक्तिजकणेऽथवाऽधिकम् !  
 पश्य भीरु ! करवै परीक्षणं  
 तन्निगद्य कुचमार्जनं व्यधात् ॥५२॥

कुङ्कुमैणमदचर्चिते कुच—  
 द्वन्द्वशम्भुशिरसि न्यधापयत् ।  
 पाणिशूकशकलेन्दुरेखितं  
 मूष्य औपयिकमेव भूषणम् ॥५३॥

सद्वयोरथ मिथोऽभवद्भुज—  
 द्वन्द्वगाढपरिरम्भविभ्रमः ।  
 न्यग्भ्रमूव गिरिजागिरीशयोः  
 पूगनागलतयोर्विचेष्टितम् ॥५४॥

तां वुभुक्षुरथ सम्भुजिक्रिया—

माचचार पटुचाटुचञ्चुरः ।

आविरास मणितोपसङ्कुल—

प्रववणत्कनककिङ्किणीरवः ॥५५॥

स्विद्यति स्म विधुबिम्बमम्बर

तारकाविलुलितं व्यभासत ।

सुप्तसूननलिनीव मुद्रिते—

न्दीवरेव सरसी रतिस्तयोः ॥५६॥

विद्रुमस्यललितैर्नु विद्रुतं

मन्दितं मलयमन्दमारुतैः ।

कोकिलस्य किल काकलीरवै—

मुद्रितं समभवद्रतं हि तत् ॥५७॥

सा प्रबुद्धतरबुद्धिवैभवा

कामकेलिकलहटत्तरम् ।

तारहारमपि वेद नो चिरात्

स्वेदबिन्दुपदतुन्दिले हृदि ॥५८॥

सुन्दरा अपि सुवृत्तशालिनः

शुक्तिजाः स्वगुणवैभवच्युताः।

सुभ्रु ! वो हृदि न शेकुरासितुं

तद्गुणो हि महिमानमर्हति ॥५९॥

शौरिदत्तनखरक्षताङ्कितं

तत्तदूरुयुगलं प्रशस्तियुक् ।

स्तम्भयुग्ममिव हैममद्युत—

द्रुगौत्रजं नु रतिकामयोरिदम् ॥६०॥

सा मुहुर्मुहुरुदीक्ष्य भर्तृजै—  
 रङ्कितं नखपदैः कुचद्वयम् ।  
 सस्मितं च यद्मध्यसूयया  
 कुञ्चितभ्रुकुटिभेव चकृषी ॥६१॥

आकलय्य स च तां तथाऽब्रवीत्  
 क्षन्तुमर्हसि न मन्तुमद्य मे ।  
 कोपलोपनकृतेऽथ कोपने !  
 त्वन्नखव्रणितमस्तु मे वपुः ॥६२॥

सुभ्रु ! किं न घटते पयोधरे  
 शक्रचापमिव मन्नखाङ्कनम् ।  
 तन्मयेति विगणय्य निर्ममे  
 कोप एष यदि तेऽस्त्वनुग्रहः ॥६३॥

त्वद्रते विदुषि ! खण्डशर्करा—  
 माधुरीपरिणते स्पृहाकरम् ।  
 तन्मिथो नखविलेखनं कटु—  
 स्वादु किं न मरिचावचूर्णनम् ॥६४॥

किन्तु मन्तुकर एष मे करः  
 किं न ते व्यजनवाहनाकरः ।  
 किङ्करः बलमभरालसेक्षणे !  
 स्वापराधशमनाय नायकः ॥६५॥

ब्रीडनीडशरणं तवोचितं  
 साध्वि ! साधु मम नव्यसङ्गमे ।  
 सोऽहमेव निरपत्रपो मुहुः  
 प्रार्थये त्वदनुषङ्गनर्म यत् ॥६६॥

घूर्णमाननयनं श्लथालकं  
 ह्रीतमुत्पुलकमस्तयावकम् ।  
 तत्प्रियामुखमुदीक्ष्य संलपन्  
 सान्द्रशर्मजलधौ ममञ्ज सः ॥६७॥

त्वत्कटाक्षविकटायितक्षणो  
 मत्सुधारसनिमञ्जनक्षणः ।  
 यत्प्रसादविशदोक्वितताण्डवं  
 चण्डि ! मे विजयडिण्डिमायितम् ॥६८॥

यस्त्वदीयपरिभ्रमसम्भ्रमः  
 सार्वभौमपदलम्भन मम ।  
 यस्त्वदङ्गरतरङ्गसङ्गमो  
 ब्रह्मशर्मपदसम्भदोदयः ॥६९॥

या त्वया मयि भृशं ममत्वधी—  
 र्धीयते सुदति ! सा मया त्वयि ।  
 नेति चेन्मम शिरःशिखामणिः  
 पादयोः स पतयालुरस्तु ते ॥७०॥

इत्युदीर्यं पतितेऽथ पादयोः  
 प्रेयसि स्वपदपङ्कजं प्रिया ।  
 सञ्जुगोप पतिमस्तकं मुदा  
 हस्तयोरधृत चुम्बितालिकम् ॥७१॥

तं कृतार्थयति सा स्म सस्मर—  
 स्मेरसान्द्रकिलिकिञ्चितद्रवैः ।  
 तत्प्रियप्रणयमेव जातुचित्  
 सान्तरायमकृतान्तरान्तरा ॥७२॥

साङ्गरागकलिताङ्गवासना

भूषणांशुकचयैः पृथग्विधैः ।

नित्यमेत्यथ नवोदसुन्दरी—

विभ्रमं स्म दधती हृदीशितुः ॥७३॥

जातुचित्प्रणयिनि प्रियार्थनां

कुर्वति व्यधित सा स्ववामताम् ।

कोपरोपिणि च सानुकूलता—

मातदीहितमथो व्युपारमत ॥७४॥

तं च कौकनदचुम्बिषट्पद—

श्रीधरं तदधरं विलोक्य सा ।

सिष्मये स्मितनिदानपृच्छकं

प्रत्युवाच मुकुरार्पणात्करे ॥७५॥

यस्तदीयमणिमण्डनैः क्वचित्

सन्तुतोष विषसाद स क्वचित् ।

वरुलभः स्फुटतदङ्गरोचिषां

सन्दिदृक्षुरपिधाविधायिभिः ॥७६॥

तत्त्वदङ्गपरिरम्भचुम्बना—

स्वादवीक्षणरतोत्सवद्रवैः ।

कामिनीं स चकमेऽथ कामुको

नासकृत्क्वचिदवाप तर्पणम् ॥७७॥

इत्थं निर्भरचाटुगर्भवचनैराश्वास्य विश्वासिनीं

तामुद्यत्तमसान्द्रसम्मदमदो रामां स चारीरमत ।

तौ सान्द्रद्रुमकाननाद्रिशुषिरप्रासादभूर्मीरत—

व्यायामस्मरहारिहासललनैः सान्द्रा भृशं चक्रतुः ॥७८॥

इति श्रीमत्तपागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरु—

विनेयपण्डितेशश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाम्नि महा-

काव्ये कनकानिधुवनं नामैकादशः सर्गः ॥११॥

## ॥ द्वादशः सर्गः ॥

रणरणकतः सायं सायंतनीं सुषमां यदुः  
प्रस्रमरतरां प्रेक्षाचक्षुर्निरीक्ष्य स चक्षुषा ।  
करिपरिलसत्सिन्दूराभां तमिस्रविमिश्रणा-  
दिव नववधूं नीत्वोपाश्लोकयत्सविधं च ताम् ॥१॥

अरुणतरुणः स्फारस्फारैः करैरनुरागवान्  
वरुणककुभं कान्ते ! कान्तामुपाश्लिषदश्लथः ।  
नवधवपरीरम्भारम्भादिवोत्तमकुङ्कुम-  
द्रवनवरसैर्दिग्धा मुग्धा विभात्यपरावधूः ॥२॥

इह हि मिहिरः पायं पायं भरादिव वारुणीं  
स्वरुचिविभवं दायं दायं कृशानुकृशाश्विने ।  
प्रथयतितरां तैलम्पातां तमिस्रकणान्क्रिन्  
स्खलितललितक्रीडात्रीडागतं दधदम्बरे ॥३॥

तरणितरुणश्लेषे सैषा विशेषलसत्तम-  
श्चिकुरनिकरेऽमुष्मिन्नायल्लकं किल लोहितैः ।  
द्युतिपरिकरैः प्रत्यक्काण्ठा नवोदवधूरहो  
सुदति ! दधती शोभारम्भं बभार निभालय ॥४॥

दशशतकरोऽप्युच्चैर्व्याधामतोद्धतधामभि-  
र्धवलितधरो ध्वान्तध्वंसी प्रतापपरंतपः ।  
अपि विधिविधौ वामे ! वामेतरव्यवसायधी-  
रजनि रजनिप्रारम्भे हा रविः स गलच्छविः ॥५॥

दिवसकरिणं सन्ध्यासिंही जघान सपञ्चकं  
प्रखरनखरैरस्तक्ष्माभृच्छिरस्युदगादियम् ।  
दिवि भृशमसृग्धारासारप्रवाहपरम्परा  
विदुषि ! विदुजास्ताराकराः स्फुरन्त्यथ शुक्तिजाः ॥६॥

नय नयनयोः पद्मां सन्ध्यां नरीनृततीं नटी—

मरुणसिचयाकल्पां रङ्गाङ्गणे सुरवर्त्मनि ।

अयि परिलसत्ताराहारावलीरजनीकर—

स्तरलिततरां तस्या भूषा विलोलविलोचने ॥७॥

निकषमिषतां बिभ्रत्यस्ताचलस्तु शिलातले

द्रुतकनकजं पिण्डं क्रीत्वा विकर्तनमण्डलम् ।

जलनिधिरये दत्ते साक्षात्परीक्ष्य पितृप्रसू—

हुतभुजि नभोहस्ते तारावराटककोटितम् ॥८॥

इदमयि ! वियत्स्वर्गङ्गायाः प्रवाहपरम्परा

विलसतितरां यस्या यादांस्युद्भूनि चरन्ति हि ।

मकरमिथुनप्राहाः सधूरयंकुलीर इतोऽप्सरः—

सवनधुवनत्रासादासादितानि निमग्नताम् ॥९॥

अजनि रजनी योगिन्येषा सुसिद्धिमती ध्रुवं

कमनमजिजीवद्या पद्माकरं समसूमुद्दत् ।

जगदपि खपुष्पीयत्ताराऽनुकारि विभूतिभि—

निरधिकरणं दृष्टादृष्टाभिराभिरदीदृशत् ॥१०॥

प्रणयिनि ! वियद्गङ्गारङ्गद्रथाङ्गनितम्बिनी—

कुलविरहजाश्रूणां मन्ये गलज्जलबिन्दवः

वियति विचरन्तीमास्ताराः स्फुरत्तरमौक्तिक—

भ्रमभरभृतो धारास्तासामनुकमसङ्कमाः ॥११॥

सुरमिथुनताव्यामोहाय प्रसूनशरस्य किं

प्रहितविशिखाः संलक्ष्यन्ते विहायसि तारकाः ।

प्रतिफलतु वा पञ्चेष्टुक्तिः प्रपञ्चनिरुक्तिका

श्रुतपथि यथारूढा पञ्चाननध्वनितार्थता ॥१२॥

दिवसकलितालित्वव्यापादनादतिरंहसा

दिशि दिशि तमःपारावारस्त्रिविष्टपमानशे ।

इह हि मलिनाः प्रायः सीमक्रमव्यतिलङ्घना—

न्मलिनमलिनाचाराः स्वैरं चरन्ति विशृङ्खलाः ॥१३॥

प्रसरतितरां प्राचीमूलात्किमभ्रमुवल्लभ—

स्फुटकटगलद्दानोद्दामप्रवाहभरस्तमः ।

दशशतकरस्तब्धः किं वा रवेः परिभावतो

गगनभवनाभोगः सद्यः पथात् भुवस्तले ॥१४॥

उपरि लसति न्युञ्जे शालाजिरप्रतिमेऽम्बरे

दिनमणिदशाकर्षज्वालावलिभ्रमिभिर्घृता ।

विगलति गुरुभूय ध्वान्तं तदञ्जनपुञ्जजा

प्रसृमरतरा व्यालुम्पन्ती जगज्जनिता र्थताम् ॥१५॥

सुतनु ! जनतागावः पर्यायताव्यवधाभिधाः

स्वयमधिकृतैर्गोसाहसैरनायिषतामुना ।

तदवतमसान्नांध्यं गोस्वामिना सह नेति चेद्

नयनविषयं कस्मात्ल्लोको घटादि न चेक्षते ॥१६॥

अयि ! परिचितास्तारैस्तारैः प्रसूनशरेषु नि—

भृगमदनिभैर्ध्वान्तैर्दिग्धाः स्फुरन्त्यसिताम्बराः ।

निशि शशिवियुक्तायां मा भूर्मयि त्वमसूयिनी

किमपि हि समन्दाक्षा मन्दं दिशोऽप्यभिसारिकाः ॥१७॥

तमसि तदलं द्रव्यत्वादिद्वयवस्थितिसन्धया

मत्तमतितरामौलकं तत्परीक्षणताक्षमम् ।

अयि ! किल कुलं नोल्कानां प्रकाशयति स्फुटं

जगति सकलं वस्तुस्तोमं तमोनिचितेऽपि हि ॥१८॥



तम इव निजारातौ घस्त्रे पदार्थगणस्य किं  
 प्रतिपदचरीश्लयाचारीः प्रचारगवेषणे ।  
 निखिलभुवने मन्ये प्रावेशयत्तदिति प्रभौ  
 गदति झगिति प्राची किर्मीरितांशुभिरावभौ ॥१९॥

कुमुदवदने ! स्वभ्रातृव्यप्रशस्तिमसासहिः  
 किमु कुमुदिनीकान्तः प्राचीमुखादुदगादिव ।  
 तदयमदयं शोणः क्रोधादिति स्वकरोत्करैः  
 किल विघटयन्विश्वद्रीचीं तमोरिपुसन्ततिम् ॥२०॥

कुचगिरितटीदुर्गे मानःस्फुटे मयि मानिनी—  
 जनहृदि किमद्यापि स्थेयान्क्रुधेत्यरुणो विधुः ।  
 विकचवदनाद्भृङ्गश्रेणीलसत्करवालिकां  
 प्रसृमरकरः कर्षत्युच्चैः सुकैरवकोशतः ॥२१॥

उदयशिखरिप्रस्थोच्छ्रायच्छलप्रतिसीरया  
 व्यवहिततनुश्चन्द्रश्चच्चकोरदृशोरपि ।  
 विकिरति सुधाधारासारानिव स्वकरैरयं  
 कुमुदविशदस्मेरां दृष्टिं प्रसादय सादरम् ॥२२॥

हरिहयहरिस्कुम्भीन्द्रेण स्वसोदरताधिया  
 शिरसि विधृतः सिन्दूरेणारुणो विधुरुद्गतः ।  
 किमु सुरववधूवृन्दैर्विम्बं तदीयमचुम्बि तैः  
 स्ववदनतुलारागाद्यावद्रवारुणिताधरैः ॥२३॥

निविडरजनीपीतं व्योम क्षणात्क्षणदाकर—  
 द्युतिभरसुधाव्यासङ्गेनारुणत्वमवाप यत् ।  
 स्वकरकठिनीघर्षैः सम्मार्जयन्नमृतद्युती  
 रजनिरचितां ध्वान्तस्योडुप्रशस्तिमदीदिपत् ॥२४॥

दिनमणिमणि सायाहस्तु प्रतारणतापट्टः

सुरुचिरुचिरं क्रीत्वा व्योम्नो व्यतीतरदेष यम् ।

कृतककनकं चान्द्रं बिम्बं जहाति सहा स्वयं

स्फुटमरुणतां पाण्डुच्छायः क्रमाद्रजतीभवन् ॥२५॥

प्रथममभवन्सायच्छायासुकुङ्कुमपङ्किला—

स्तदनु च तमःकस्तूरीभिर्विभूषितविग्रहाः ।

सुदति ! विचरच्चञ्चन्द्रद्युतिव्यतिचुम्बितै—

रिव शुशुभिरे काण्ठावध्वश्चिता हरिचन्दनैः ॥२६॥

विधुमणिविधादुग्धे मुग्धे ! विवर्द्धयितुं विधु—

जलनिधिमपः कोकीशोकाकुलेक्षणमण्डलीः ।

निजकरसुधाऽमन्दस्यन्दप्रवाहमरंहयत्

फलति हि सतामृद्धिः पूज्यक्रमापचितिक्षमा ॥२७॥

तपनतनयापूराकारे विहायसि चन्द्रिका

त्रिदशतटिनीवाहव्यूहो व्यगाहत तत्र च ।

सुचरितपदे वेणीसङ्गे निमज्ज्य दिवंगताः

किल सुकृतिनस्ताराकारा ध्रुवं विनिमीलिताः ॥२८॥

तिमिरगरलास्वादादेता निमीलनतामिता

निजकरसुधासेकैराशावधूः समजीजिवत् ।

विधुरथ नमःपारावारेऽन्तरीपनिभो बभौ

प्रसरविसरज्ज्योत्स्नाजालस्फुरज्जलपूरिते ॥२९॥

सुरपथसरःपूरे ज्योतिर्ज्वलज्जलसम्भृते

किमपि मुकुलैस्तारैः श्यामालताश्रियमावहत् ।

नलिननयने ! शङ्के पङ्केरुहभ्रमविभ्रमं

शशधर इहाधत्ते हासप्रकाशनसौरभः ॥३०॥

हरमलगरञ्जालाशान्त्यै कलामपि षोडशीं  
 व्यतरदनिशं पीयूषान्धः सुपर्वगणाय यः ।  
 जगति जनतार्जावर्जावेक्षणाय घृणिच्छटाः  
 सुरतरुतुलां कैः कैरंशैर्निजैर्न विधुव्यधात् ॥३१॥

जठरनिहितस्याङ्गन्यङ्कोर्वधाय नु सिंहिका—  
 तनय उदितं भूयो भूयो जवास विधोर्वपुः !  
 अपि निजतनुग्रासान्नासावदान्निजमङ्गलं  
 प्रमुदितहृदा तेनेत्येव व्यमुच्यत स ध्रुवम् ॥३२॥

कुमुदवनजाहासद्योतिद्युतिः किल कौमुदी  
 न यदि शशिनि प्रत्यक्षे वा दिवा किमु नोदिता ।  
 ननु नयनयोः सध्रीचीयं चकोरपतत्रिणा—  
 मयि जलनिधेर्भ्रूकुंशस्याथ ताण्डविकाऽपि का ॥३३॥

पितृगुणतुलां धत्ते पुत्रः सतीति जनश्रुतिः  
 खलु जलनिधेर्वृद्धिहासौ सितासितपक्षयोः ।  
 स्वयमनुपदं वोढा वंश्यः स एष सुधाकरो  
 धुरि किल कलापारीणानां कलानिधिरित्यमृत ॥३४॥

क्वचन विशदज्योत्स्नाच्छाया क्वचित्प्रविजृम्भते  
 जनकजनितं जन्ये प्रायो लसत्युपलक्षणम् ।  
 इह धवलिमा मुग्धो दुग्धाधिकस्य सुधानिधे—  
 र्यदिति सतिताकिर्मीरत्वं कलङ्कजमङ्गलम् ॥३५॥

विधुरिति सुधैवासीदाप्यायनाय सुधाभुजां  
 मखमुखहविर्दानादुन्नीयतेऽच्छतरच्छविः ।  
 इह हि कियदप्यङ्के पङ्कं शशाङ्कमुखि ! ध्रुवं  
 विलसतितरां साक्षात्तपोक्षणक्षणजं हृदि ॥३६॥

रजनिरजकी चन्द्रागाधहृदामलचन्द्रिका—  
प्रसरविसरक्षीरैरक्षालयत्सकलाम्बरम् ।

तिमिरनिकरच्छायानीलीमलीमसमातत—  
स्मरहरशिरःसिन्धूत्तानप्रवाहसहोदरैः ॥३७॥

कुमुदनिकुरम्बाणामारूढयोगिपदस्पृशां  
किल विदधतामन्तर्मोदं जडेषु विरक्तताम् ।  
अयि ! सुरवधूर्ज्योत्स्नी ताराकटाक्षशशिस्मितै—  
श्चिरपरिचिता ज्योत्स्नाकरपैर्बभञ्ज समाधिताम् ॥३८॥

ननु सहगतः शुभ्राङ्गत्वं बिभर्ति तमिस्रया  
शितितनुविधामेष ज्योत्स्नी निशाऽथ निशाकरः ।  
असितसितयोः शोभाभूत्यै कृशोदरि ! पक्षयो—  
गैदति हि बहिर्बुद्धिलोकस्तमङ्कविटङ्कितम् ॥३९॥

यदि स भगणानेकीकृत्य प्रगल्भतया विधि—  
र्घटयति विधुं नव्यं तद्व्यञ्जयत्यकलङ्कितम् ।  
अधरमधुरास्वादं साक्षात्त्वदास्यसुधाकरं  
कथमिव तुलां धत्तां चन्द्रः कलङ्कविडम्बितः ॥४०॥

विधिरिह गुणानादात्सौधाकरादपि मण्डला—  
न्मुखविधुविधौ यत्ते दोषाकरोऽयमभूततः ।  
अनुशशिशृगात्सारं नीत्वा त्वदक्षियुगं व्यधात्  
स्थित इति गताक्षोऽसौ तस्मिन्निरस्य भवन्मुखम् ॥४१॥

मुखमिति सुधासारं यत्ते विधिर्निरमात्ततः  
खलु खलकृतं पिण्डं तस्यावशिष्टमखण्डितम् ।  
स किल सकले लोके ख्यातः शशाङ्क इति स्फुटं  
कलय सकलं बिम्बं पङ्कच्छविच्छलपिच्छिलम् ॥४२॥

प्रथयति करानादित्सुस्ते मृगाक्षि ! मुखप्रभां  
 विधुरथ दिवा फुल्लाम्भोजान्करानपि पञ्चिनी ।  
 सुषमसुषमेऽप्येकत्रार्थे द्वयोः किल लुब्धयो—  
 रिति कमलिनीतारापत्योस्तदास सपत्नता ॥४३॥

न भगणपरीवारो नामुं महौषधयः स्त्रियः  
 किमपि च जरामृत्युच्छेत्री सुधा न सुधाकरम् ।  
 द्विजपरिषदामाशीर्बीजी न वा सरिताम्पतिः  
 क्षयसमयतस्त्रातुं कोऽपि प्रभृष्णुरभुन्नहि ॥४४॥

अयमथ तमिस्रायामेकादशापि कला निजा  
 विसृजति शशी रुद्रेभ्योऽथ स्मराय च पञ्च ताः ।  
 शरधिविधये कृत्वा भूर्ति स्वकामिति पात्रसा—  
 न्मुहुरलमलञ्चक्रे स्वाभिः कलाभिरिलातलम् ॥४५॥

शशधरसुधाकुण्डादङ्कस्फुरच्चषकक्षिपां  
 नभसि भगणो वध्वापानोऽमृतस्य सपीतये ।  
 कलयतितरामच्छातुच्छस्फुटस्फटिकोपल—  
 प्रघटितदले शङ्के पङ्केरुहाक्षि ! निरीक्षसे ॥४६॥

किल कमलभूर्बक्त्राम्भोजं त्वदीयमिदं यतो  
 नयननलिनद्वन्द्वानात्प्रतीक्ष्यमपूजयत् ।  
 तदिति शशिनो म्लानिच्छायामषीकलुषं मुखं  
 नहि शशमृगाद्यङ्काशङ्कालवः प्रमिमीमहे ॥४७॥

अयि ! कुमुदिनीभर्ता स्थाने चकार करग्रहं  
 सरसिजकराश्लेषादेशा जहास कुमुद्रती ।  
 नवघवपरीरम्भामोदप्रमोदभरदवत्—  
 तरमधुरसस्वेदारार्द्रां तनूमनुविभ्रती ॥४८॥

अविरततमः पौरोभाग्यं समीक्ष्य सुधाकरं  
 तदिति सुदति ! ग्रासत्रासात्तवाप सुधाधरम् ।  
 अरुणिमपुरस्कारादारात्सितत्वमपहनुते  
 सुमुखसुषमास्पद्धागद्धीं विधुः किमु दुर्विधः ॥४९॥

विकिरति करैः पीयूषांशुःसुधा स्वसुधाविधां  
 त्वदधरसुधां मुग्धे ! मुग्धां विलोक्य मुहुर्मुहुः ।  
 हृदयविलसन्मुक्ताहारस्फुरत्तरलद्युति—  
 प्रतिकृतिमिषात्सेवाहेवाकितामिव दर्शयन् ॥५०॥

शशधरसुधासारस्फारस्फुरज्जलविज्जले  
 हरिहयखुराकारास्तारा न भान्ति नभोज्जणे ।  
 तव मुखतुलां भूयो भूयो विधाय विधिविधुं  
 व्यघटयदमुं दर्श दर्श गुणैरनुकल्पितम् ॥५१॥

मनसिजसितछत्रं रत्याः स्फुरत्करकन्दुकं  
 त्रिदशतटिनीफुल्लाम्भोजं निशाहसपुञ्जितम् ।  
 शुचितरसुधाकुम्भं काष्ठाऽङ्गनाऽऽननदर्पणं  
 गगनतिलकं सान्द्रं चन्द्रं निभालय भामिनि ॥५२॥

सुतनु ! वितनु स्मेरां दृष्टिं त्वदाननपङ्कजा—  
 द्बहुतृणमसावेणश्चन्द्रं मरीचिकया मृशन् ।  
 तत इह विशश्रामाश्रान्तं सुधामरुमण्डली—  
 तरलितमनाः प्रायोऽऽहार्यः पशुभ्रमविभ्रमः ॥५३॥

विधिरथ सुधासारं मुग्धे ! विधाय तवाननं  
 स्मितविलसितज्योत्स्नाजालप्रसादसदोदितम् ।  
 स्वकरकमलद्वैतप्रक्षालनप्रगलत्सुधाऽऽ—  
 विलजलमयं चन्द्रं मन्ये चकार निकारतः ॥५४॥

अथ निगदति प्रेयस्येवं प्रियप्रमदा मुदा  
 नयनमनयन्निद्रामुद्रावशं भृशजागरात् ।  
 कृतदृढपरीरम्भारम्भौ मिथो मिलिताधरौ  
 द्रवदभिनवामन्दानन्दाविमौ च निदद्रतुः ॥५५॥

प्रियसहचरीपीनोरोजस्फुरत्तरपत्रता—  
 स्वकरिमकरीमुद्रीभूतस्तनान्तरमण्डलः ।  
 विभुरिह बभौ पर्यङ्काङ्के मिथः श्वसनानिल—  
 व्यतिकरमिलद्रूपं द्वन्द्वं सुखं तदसूषुपत् ॥५६॥

निशि शशिरुचा यान्त्यामान्त्यां दशामथ तारका—  
 स्तरलतरलच्छायामायामिता व्यगलन्निव ।  
 हरिकरहरित्रासादासादितश्चरमां दिशं  
 तिमिरकरिराट् कामं कामं मरुत्पथकाननम् ॥५७॥

अथ कथमपि प्रेक्षाचक्षुर्विवक्षितविग्रहाः  
 कुशलकुशलारब्धा दृग्धा गुणैरिव मालिकाः ।  
 स्फुटमतितरामेते वैतालिका जगदुर्गिरो  
 यदुकुलपतेर्जागर्यायै प्रचारपुरस्सराः ॥५८॥

जय जय जगज्जैत्रक्षेत्रान्वयाम्बरचन्द्रमः  
 स्वरसविसरत्कीर्तिज्योत्स्नाप्रसादितविष्टप ।  
 सुसुखसुषमा भग्ना भग्ना कलङ्कनिषद्वरे  
 मलिनमलिनच्छायां त्वत्तो दधौ विधुमण्डली ॥५९॥

सुररिपुरिपोर्वक्षो रूताऽऽतपत्रितकौस्तुभं  
 सितविसलतातन्तुच्छन्नं स्वपङ्कजमन्दिरम् ।  
 विधुमथ जहौ मत्वा लक्ष्मीः शिलीन्ध्रमिवासनं  
 तव यदुपते ! स्थाने स्थेग्णा कराम्बुजमाश्रयत् ॥६०॥

द्युमणिकिरणस्फूर्तावुन्निद्रतां नयनद्वयी  
 नलिनवनतास्फारामिन्दिदिरैर्दधती तुलाम् ।  
 पियसहचरीनेत्रापातैर्निपीतरसा रसा—  
 दभवतु भवतः शय्योत्थायं प्रमोदविभूतये ॥६१॥

शतमखशचीद्वन्द्विकान्तव्यवायविवर्तन—  
 च्युतसुमनसस्तारास्तारा नभस्तलिमे बभुः ।  
 अशकलशशी गण्डाभोगोपवर्हमिहार्हति  
 प्रसृमरकरस्तोमक्षौमोत्तरच्छदतां दधत् ॥६२॥

शिशिरकिरणे रन्तुं याते जलेशदिगङ्गनां  
 व्यपगतवसुः सोऽयं चक्रेऽनयाऽपि कलानिधिः ।  
 इति हरिहरिदृशं दर्शं जहास विकासिनी  
 परिभवपदं प्रायोऽस्वीयः परिग्रहसङ्ग्रहः ॥६३॥

तरणितरुणः प्रातःसन्ध्यां विवोदुमिवारुण—  
 प्रतिसरकरः संबिभ्राणां सुमङ्गलमण्डनम् ।  
 परिसरलसज्ज्योतिर्लाजाहुति दधतीमिमा—  
 मरुणमबृहद्भानौ सानौ किलोदयभूतः ॥६४॥

विबुधमिथुनानङ्गक्रीडात्रुटच्छतयष्टिक—  
 प्रकरविकिरन्मुक्ता मुक्ता जवादुडुसंहतीः ।  
 इह बहुकरैः सम्मार्ष्टि स्म ध्रुवं गगनाङ्गणे  
 दशशतकरः प्रातः प्रीतः शतक्रतुनोदितः ॥६५॥

हरिहयपुरस्तारादीपाक्षतैश्च तमोरुहा—  
 शवलकवलैः मृष्टातिथ्यो घनाश्रयसञ्जनः ।  
 वितरित शशिग्रासं भूयस्तरामुदसक्तुजं  
 प्रसरविसरत्पाद्यं ज्योत्स्नाजलं परिशीलयन् ॥६६॥



अशिशिरकरो रोषाद्दोषां जघान निशापतौ  
 गलितमहासि ध्वस्ते निस्तेजसि ग्रहसङ्ग्रहे ।  
 शितितमतमः केशग्राहं ननूदयभूधरे  
 तदरुणमसृग्वाहं संवावहीति हरेर्हरित् ॥६७॥

रजनिरजनिक्षीणा तारा विनेशुरथ क्षणा—  
 दपि कुमुदिनी निद्रामुद्रां नितान्तमुपेयुषी ।  
 द्रुतमपि नयत्सान्द्रश्चन्द्रः प्रियाविरहाद्द्रुत—  
 स्तदयमदयोऽथाश्मः साक्षात् ध्रुवं प्रमिमीमहे ॥६८॥

मिहिरहरिणा ध्वान्तोद्दामद्विपः स्वकरोत्कर—  
 प्रखरनखरैर्भिन्नस्तत्कुम्भजैर्ननु शुभितजैः ।  
 नवकुशशिखासूचीप्रोतैस्तुषारकणैरियं  
 सृजति निजकं हारं सन्ध्या नवोढवधूरिव ॥६९॥

करशरभरक्षेपाद्रात्रौ तमः सहयुध्वना  
 रजनिपतिना खेदक्षीणौजसोषसि मन्दितम् ।  
 उषितममुना स्वांशभ्रंशाद्गिरीशजटाच्छटा—  
 त्रिदशतटिनीतीरच्छायातरुव्यतिषञ्जनम् ॥७०॥

उदयतितरां धर्मज्योतिः कलानिधिरस्ततां  
 व्रजति कमलान्युञ्जृम्भन्ते निमीलति कैरवम् ।  
 प्रियमतिरसात्कोकी कोकं वृषस्यति तामस—  
 द्विजकुलमगाद्बाधां नानाविधा हि विधोर्विधाः ॥७१॥

कुमुदवनताबन्धुः सिन्धोः सुतोऽथ कलानिधि—  
 विघटिततमो दस्युस्तोमस्तमीदयितापतिः ।  
 भुवनजनतानेत्रानन्दी द्विजोऽत्रिज एव यो  
 हतविधिहतः सोऽस्तं यातोऽमृतद्युतिरद्युतिः ॥७२॥

स्वदनविरहात्क्षीरस्यन्ति स्वधैनुकतर्णका  
 उषसि मणिमन्थप्रावभ्यस्तथा लवणस्यनि ।  
 समज इह ते जात्याश्वानां कुमारकमण्डली  
 कवलमवलम्ब्येयं हस्ते दधिस्यति सस्पृहम् ॥७३॥

त्यज निजभुजाश्लिष्टामेनामपि स्त्रितरां वधूं  
 भज भगवतोऽद्वैतानन्दात्मकस्य कथाप्रथाम् ।  
 घुसृणमसृणाः स्तोकान्मुक्ताः करप्रकरा रवे—  
 र्गगनभुवनाभोगं लिम्पन्त्यमी जगतीपते ! ॥७४॥

किमु किमुदिनी द्वेषात्सूर्यं न पश्यति तत्परं  
 किमपि विदितं शब्दग्रन्थे निमीलनकारणम् ।  
 कृतभणितयोऽसूर्यपश्या भवेयुरसंशयं  
 प्रथितमहसो राज्ञो दारा निगूढनिजेज्जिताः ॥७५॥

यदयमदयश्चन्द्रश्चन्द्रातपैर्निरदीधरत्  
 स्थलकमलिनीं भास्वत्कान्तां स्वभर्तृवियोगिनीम् ।  
 विकचकुमुदेस्तामप्येषाऽहसीत्कुमुदिन्यत—  
 स्तरणिररुणो रोषादद्वैतं विजित्य विजृम्भते ॥७६॥

उद्यन्नुद्योतिताशः शितिमतमतमो दुर्दिनेरभदाभः  
 प्राचीमूलादुदञ्चत्करनिकरशतैः पाटयन्पाटलाभान् ।  
 दम्पत्योः श्लिष्टवक्षोद्वयमुकुलदलैः सार्धमम्भोजमुदां  
 चक्रद्वन्द्वैः सहार्कैः समघटयदथो कैरवाणां मुखानि ॥७७॥

श्यैनंपातां वितन्वन्दिनमुखमृगयुश्चण्डमार्तण्डबिम्ब—  
 श्येनं प्राचारयत्स्वं स गगनगहने जातशङ्कः शशाङ्कः ॥  
 त्रातुं विद्मः सशङ्खजलधिमधिगतो ध्वान्तकाकाः प्रणेशु—  
 स्तारापारापतानां कुलमभजदथोड्डीनसण्डीनकृत्याम् ॥७८॥

यः पौरंदरमुग्धसौधशिखरे माणिक्यरत्नप्रभा—

प्राग्भारान्वितशातकुम्भकलशभ्रान्ति बिभर्ति स्फुरन् ।  
भानुर्भानुविभूतिभूषिततनुर्बन्धूकबन्धुद्युतिः  
प्राचीकुण्डलमण्डलं ननु लसत्यैन्द्रे महे मन्महे ॥७९॥

कोकानां मिथुनान्यशेषविरहं शीतांशवे सञ्ज्वरं  
सम्प्रत्यर्कमणिभ्य एव विजहुः स्वानन्दसान्द्रोत्सवम् ।  
सार्धं तैरथ संविभज्य च मिथः पद्माकरैर्वीक्ष्य तं  
कर्कन्धूकुणशोणमम्बरमणिं व्यातेनिरे मङ्गलम् ॥८०॥

अरुणकिरणैः कालिमन्या मधुव्रतमण्डली  
किमरुणमणेः शोभारम्भं बभार विसारिभिः ।  
दरविकसितं पद्मा पद्माकरं कुमुदान्मुदा  
विनिमयमयं मन्दं मन्दं निजासनमासदत् ॥८१॥

विश्वस्मिन्नपि कामकेलिजलधेः पारीणमेकं स्तुमः  
चक्रद्वन्द्वमिदं वियुज्य सततं सम्भुक्तिमन्विच्छति ।  
प्रेमारोचकरोगरुणवपुषा चण्डीश्वरेणानिशं  
किं नाकारि रसायनायितगरासोरुविस्फूर्तये ॥८२॥

निद्राणामरविन्दिनीं मधुकराः प्रौढबोध्य साराविणैः  
सानन्दं मकरन्दमेव निपपुर्भृङ्गीसखाः सम्प्रति ।  
स्वादुंकारमथो मधूकमधुरं बध्वा निपीयाधरं  
श्येनी पद्मवनी क्षणाद्रविकरैर्गुञ्जानिकुञ्जायिता ॥८३॥

सौरैः कुङ्कुमपङ्कसङ्करकरैराश्लिष्यतेऽभ्रकषा  
सौधश्रेणिरसौ गवाक्षविवरालीनाङ्गलित्वं गतैः ।  
दीप्तिर्भर्तृविद्योगिनी शिखिशिखामाविश्य याऽस्तं गतं  
सा स्वःस्था पतिमुज्जहार मिहिरं साध्वी किमुर्वीतलात् ॥८४॥

साहस्रांद्दिरसौ सुमन्थरगतिः कस्मादकस्माद्रवि—

विद्मो मन्दसुतस्य पङ्गुजननात्पङ्गुत्वमस्मिन्न किम् ।

यद् वा त्वत्तरुणप्रतापमहसां व्योमावगाहस्पृशां

सौरे लङ्घितुमक्षमः क्षतगतिर्मन्दं समुत्सर्पति ॥८५॥

आनैश्वर्यमयं विभर्ति भवतः प्रोद्यत्प्रतापार्कत—

स्तेन द्वेषिमधीमलीमसतमाकीर्तिस्तमीन्न्यक्कृता ।

मार्तण्डः करचुम्बिनीमपि तरोश्छायामयीं तामसी—

मूङ्कस्थामपनेतुमक्षमतमः स्वीयैः सहस्रैः करैः ॥८६॥

सुत्रामा स्वशचीविवाहनमहे शातक्रतुव्यादिशा—

कुम्भं कुङ्कुमपङ्कसङ्करममुं प्रीत्या समानाययत् ।

क्षोणीशक्र ! तवाभिषेचनमहं घस्रोदयेऽहस्करं

निर्मातुं विमलोत्सवाहनिर्वहैः साहस्रधारैर्जलैः ॥८७॥

सद्यस्तावथ दम्पती प्रमदतः प्रातः प्रबुद्धौ निजं

नेपथ्यं मगधेभ्य एव ददतुः प्रातोषिकं स्पर्शनम् ।

तेऽपि प्राप्य मुदं दधुः परिदधुस्तददत्तमुत्तम्भितै—

दौर्दण्डैर्वसुदेवकीर्तनमयं प्रावर्तयन्मङ्गलम् ॥८८॥

आनन्दोदयपर्वतैकतरणोरानन्दमेरोर्गुरोः

शिष्यः पण्डितमौलिमण्डनमणिः श्रीपद्ममेरुर्गुरुः ।

तच्छिष्योत्तमपद्मसुन्दरकविः संहब्धवाँस्तन्महा—

काव्यं श्रीयदुसुन्दरं सहृदयानन्दाय कन्दायताम् ॥८९॥

इति श्रीमत्पागच्छनभोनभोमणिपण्डितोत्तमश्रीपद्ममेरुविनेयपण्डिते-

शश्रीपद्मसुन्दरविरचिते श्रीयदुसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये सन्ध्यो—

पश्लोकमङ्गलशंसनो नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

॥ समाप्तं चेदं श्रीयदुसुन्दरं नाम महाकाव्यम् ॥

## परिशिष्ट-१

### यदुसुन्दरमहाकाव्य में प्रयुक्त छन्द

- अनुष्टुभ् ९. ४९, ५०, ५८, ६४ / १०. ४१, ४३-४५  
 इन्द्रवज्रा ९. २१, २३  
 कलहंस ९. १६  
 कालभारिणी ६. ३८, ३९, ४०  
 जलधरमाला ६. ९  
 तोटक ६. ४१, ४२  
 द्रुतविलम्बित ३. १-३४ / ९. १७, ३६-४८, ५१  
 पुष्पिताम्रा ५. ६० / ९. १५, ३२, ७४  
 पृथ्वी ५. ६१  
 प्रबोधिता १०. ४२  
 प्रमिताक्षरा ९. १८, १९, ३३, ३४, ३५  
 प्रहर्षिणी ३. ४१-७७ / ५. ५३  
 मञ्जुभाषिणी ७. १-८७  
 मत्तमयूर ५. ४९ / ६. ८  
 मन्दाक्रान्ता ५. ६२  
 मालिनी १. ७० / ९. ५२-५७, ५९-६३, ६५-७३  
 रथोद्धता ११. १-७७  
 रुचिरा ५. ६४  
 वसन्ततिलका १. ६३-६९ / २. ७३-७६ / ३. ७८-१९२ / ४. ४९-६९,  
 ७१-८०, ८३-८९, ९३, ९५ / ५. १-४, ९-१३, १६, १९-  
 २४, २९-३४, ३८-४०, ४३, ४५-४८, ५१-५२, ५५-  
 ५७ / ६. १-६, १०, १३-१७, १९-२८, ४४-६९ / ८.  
 १-६९ / ९. २०, २२, २४, २९-३१  
 वंशस्थ १. १-६२ / २. १-७१ / ३. १९३-१९५ / ४. १-४८ /  
 ९. २६-२८  
 शार्दूलविक्रीडित २. ७९ / ३. २०३ / ४. ७०, ८१, ९०, ९१, ९४, ९६ /  
 ५. ५-८, १४ १५, १७-१८, २५-२८, ३५, ४१, ४२,  
 ५०, ५८ / ६. १८, ३५, ३६, ६४ / ७. ८८ / १०.  
 ६२, ६३, ६५; ७० / ११. ७८ / १२. ७९, ८०, ८२-८९ /  
 शालिनी ३. ३५-४० / ५. ५४ / ६. ७, ३३, ४३ /  
 शिखरिणी २. ८५ / ५. ५९ / ८. ७०, ७१, ७२ /  
 सान्द्रपद ६. ३४  
 स्रग्धरा २. ७२, ७७. ७८, ८०-८४ / ४. ८२, ९२ / ५. ३६, ३७, ४४,  
 ६३ / ६. २९-३२, ३७, ७०-७३ / १०. ७१ / १२. ७७, ७८ /  
 स्वागता ६. ११, १२ / ५. १-१४, २५ / १०. १-४०, ४६-६१, ६४,  
 ६६-६९ /  
 हरिणी १२. १-७६, ८१ /

